

गाम-भाजनपु आरनालं परिदेपयत मूहान् ; कचचिट्ठ-प्रसाधित-
काचपक्षान्, महे-व्यापूर्णित शौच-नयनान्, सपारस्परिक-कण्ठघर्ह
पर्व्यटतः, शौच-सुनिश्चित-शरीरान्, स्वसौन्दर्य-गर्व-भारेणैव मन्द-
गतीन्, अनवरताऽऽक्षिप्त-कुसुमेषु-पार्जनैरिव कुसुमैर्भूषितान्, पसना-
तिरोहिताङ्गच्छटान्, विविध-पटपात-पासितानि चिराम्नात-

हिन्दी । निद्रप्योक्तयतः = धारयतः । काम्पूहान् = कुसुमपत्रान् । प्रपु-
ष्टितेषु = “कहाँ किये हुये” इति हिन्दी । आरनालम् = आश्लिषन्,
“आनालकलीवीरकुम्भावाभिमुद्रानि च । आश्लिष” इत्यनङ् । मूहान् =
पादपत्रान् । कचम् यथा तथा प्रसाधिताः = स्वाच्छिताः, काचपक्षाः =
कुञ्चितकक्षाः “चटुक्” इति हिन्दी, वैखान् । महेन व्यापूर्णितानि
शौचानि नयनानि देवां तान् । सपारस्परिकेण = आप्योन्येन, कण्ठघ-
र्हेण = गणधारणेन सहितं यथा स्वात्तयेति पर्यटनक्रियाविरोपनम् । शौच-
नेन = नववपसा, सुनिश्चितानि = सम्बद्धानि, शरीरानि देवां तान् । सुनि-
श्चितं इधमस्य सम्बद्धकोषकम्, कचनैमुक्तत्वस्वरस्य भुज्यार्थेन वापात् ।
स्वभावदो मन्दाया गतेर्निमित्तमुद्येधते स्वसौन्दर्यस्य गर्वभारेणैवेति । कुसुम-
भूषितेषु तेषु कुसुमानि कुसुमेषुपत्तुनिर्गतिगान्मुद्येधते—अनवरतम् =
सततम्, आक्षिप्ताः = पतितः, कुसुमेषुपाणाः = कन्दसरः, वेतु तान् ।
पसनाः = वस्त्रैः, अतिरोहिता, अङ्गच्छट देवां तान् । विविधैः, परासैर्वा-
सितानि, चिराम्नातेन = अत्यधिककालदो देहानिर्धनेन, महामन्दिन-

पार कर भगा रहे, और कहीं किये हुये ताने के बर्तनों में काबी परोस रहे
सोइयों को, कहीं लिखी दुलहे सँभारे हुए, नरी से झूमते लाल आँखों
वाले, एक दूसरे के गले में हाथ डाले घूमते हुए, नई पचानी वाले, मानों
अपने सौन्दर्य के प्रमाण के भार से धीरे-धीरे चल रहे, निन्तर पचाए
जा रहे मानों प्रमत्तकली पुष्पी से अलंकृत, कहीं से अङ्गच्छटि को
तिरोहित न कर सकने वाले, नाना प्रकार के रंगों से सुगन्धित होते हुए

रह्यात् ? बरं बरिअन, आमाकोना मदती मेना, तथाउपि न
 तनीयः विमनि अयत्त इव धुम्बनीव च इदम् ! 'दहनानां
 तमात्रयो भविष्यति, अपत्रट्टरातो बिनहृदयनीति न पित्र को
 'कपनीव बने, अितनीव समुदरे, अितनीव पान्नःवरणे । या म
 'तो ! मैवं वदाम्, एव भो ' एव जगद्गोभर ! अथवा सम्बोधयति-
 'आमेवमांश्च, पोट्टमपत्रट्टरात मेनापति-वद-विदम्बनीउपि
 'सिरेन योमवेदनिध्यामि महांप्यामि वे' तिमनीदि विजयपुगधीश-
 'नहासभावां प्रतिष्ठाप समायानोउपि, शिवप्रतापय विदम्पि अथ
 'कृप्य, अथ गानय, अथ लाभ्यम्, अथ मत्तम्, अथ पारा-
 'इना, अथ भद्रुमक, अथ योणावादनमिति स्वच्छन्दैरवतुष्टा-
 'उपचर्यैर्दितानि गमयति । न च न वदति विचारयति; यत्
 'पत्तयो द्विष्टः पत्र इदम् नवेत् स एव तज्जरेन उलं कुपन्, ननु
 'पत्तारण इति नाकः । जपनीव च बन्द अयत्ताव । इवेन न शक्नोति अ
 'उन्द का शक्त करोता ? इदानीं कलहार्थी है, हमारी सेना भी बहुत बड़ी
 है, फिर भी न जाने क्यों हार्य बरिता-सा है, धुम्ब-सा होता है । 'कपनी
 'का हार होता क्यों अत्रत्यक भी मारा जायगा' इस प्रकार न जाने कौन
 'कान में पड़े से बहना गहा है, सामने दिव सा गहा है, दिव में पही
 'चाउ कम-को गहा है । नहीं-नहीं, ऐसा कभी नहीं, या तुदा बचाना !
 'अथवा ऐसा ही भा खरता है, क्योंकि सेनापति पर को विद्विष्ट करने
 'काका पर अत्रत्यक को, यदपि 'मै विचारों से लड़ूँगा, उसे या तो मार
 'काँटगा या कैद कर लाऊँगा' इस प्रकार बजापुर के सुल्तान की सेना
 में प्रतिष्ठा करके आया है और शिवाजी के पराक्रम से भी भली-भाँति
 परिचित है, फिर भी आज नाच है तो आज माना है, आज गद्गाधपान
 स्वीकृत्य है तो आज मरिछ है, आज वेदता है तो आज स्थावेरपाटी
 नईक है, आज शिवाजीवाद है, इस प्रकार स्वच्छन्द उच्छृङ्खल भठ्ठा-
 'चरण से दिन बिता गया है । यह कभी भी यह नहीं सोचता कि यही

विषये]

निर्गन्ध-रहित हुवा गुणपदेष प्रतिपद्यामः, वनन-वातादन-जीरसक-
 'हानि'व च धूनेन विदार्यापिप्यामः । इत्यम् उन्मत्तमन्त्रमितिहयराः
 शिष्यं वादीयं ह्यपि पित्रे शार्प्यायवा सं जीवन्मेव वर्यवदं करिष्य-
 नि । परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा मम भूत वम्यापि कर्तव्यम्—
 इति कर्मोन्निष्टं पुनःमाजीयोत्तरायत साधानिक-भटानरहोह-
 वनः "धन्या भवन्तो वेदा गोप्यतमा भवि विपदा एवं वीथिपु
 विधीयन्ते । महाराष्ट्र पुनापायां, जेतपु भवता पूतता सकला
 भवति" इत्यादिमन्त्रेणाऽऽमना कथयन्, एक-प्रभा-धर्मि-महल-
 नक्षत्रगणः स्वमीन्द्रदेवाऽऽकल्पंदासिष्य विदयेषा मनाति, सपत्नेव
 विधान-पट-कुटीर-द्वारमासाद । तत्र च द्दह्मिनालोऽयदुष्टावध
 यन् पुण्यनगर-निवासी गादरोऽनमय-त गान-रस-रसायने-
 रमन्दमानन्दादनुमिष्टाभोजि । तदवगत्य स भूमंवारंण कश्चिन्

पश्चिममूरे । वनन-वातेन, आरतान्, आरत जीरसान् उक्तात्, उता-
 'निव-पञ्चम' । उपमा । वर्य वरीति वर्यवदन्तम् । "विषयो
 वर्यः कश्चित्ति सत् । आरपयन् = वर्यःकुर्वन् । ईश्या भावराजम् =

और धन भर में ही उसे वनन्त (पञ्चम) अत्र की हवा से गिरे हारे
 पत्ती की तरह मार भगायेंगे । इधर हमारे मालिक के नीकर, शिवाजी
 को एक से दसियों से बाँध कर, निबड़े में बन्द करके, बाँधे जा ही अपने
 क्या में कर लेंगे । लेकिन 'यह विपदा हा बड़ा मोहन' है, किशो के धान
 में न पड़ने पाये' इस प्रकार उत्तर देते हुए देखकर, मन-हा-मन 'आर
 बीम भन्व है, निबड़े अति मोहन' विपदा भी यहाँ से इस प्रकार वैजे
 रहते हैं, पर मगडे परले तिर के पूर्व है, आरकी पूर्वता इनके भागे
 सज नही हो सकती' देखा करते हुए, अपने सेब से सभी परदेदारों की
 निद्रम कर, अपनी मुन्दगी से सभी के द्वारों की अपनी ओर लौचते
 हुए से ग.प.स (कानरम) बत का बात में प्रधान लेने के दरवाजे पर
 पहुँच गये । वहाँ परदेदार से मिले और कहा कि पूना नगर का निवासी
 मैं तुम्हें को मोहन के रसायन से आनन्दित करना चाहता हूँ । उनका

कदाचित् परिपन्थि
 सह विपं पाययेत्,
 कोऽपि गायक एव वा वीणया सह खड्गमानीय खण्डयेदित्यादि
 ध्रुव एव तस्य विनाशः; ध्रुवमेव पतनम्; ध्रुवमेव च पशुना
 मरणम् । तन्न वयं तेन सह जीवन-रत्नं हारयिष्यामः” इति
 व्याहरतः; इतरांश्च—

“मेघं भोः! इय एव आहव-क्रोडाऽस्माकं भविष्यति, तत् पूर्वं
 सन्धि-यार्ता-आजेन शिव एकत आकारयिष्यते, यावत् स स्वर्गे
 मपहाय एकाकी अस्मत्वायिना सहाऽऽलपितुमेकान्तस्थाने यास्यात्,
 तावद्वयं इयंता इव शकुनिमण्डले महाराष्ट्र-सेनायां, छिन्नं

कुम्भनो शाप मेकी गई कोई बेरफा ही मुझे मदिरा के साथ विष न दिये,
 कोई नद ही पान के साथ धर न लिखा दे, कोई गायक ही बंग के
 साथ सहम जाकर मेरे टुकड़े-टुकड़े न कर दे, उसका विनाश अवश्यम्भार
 है, उसका पतन होने में कोई संदेह नहीं, उसका पशुना मारा जाई
 निश्चित है। इसलिए हम उसके साथ अपना बहुमूल्य जीवन न
 नैराशमें। इस प्रकार करते हुए कुछ मित्रादियों और दूसरों को उनके
 धन के साथ भुल से जाकर, 'येना मत करो, कम ही रफाही मुद क्रोडा होई,
 मुनते है कि सन्धि की बातचीत के पछाने शिवाजी को एक ओर कुम्भन
 कायना, और जो ही वह अपनी सेना को छोड़कर हमारे मादिक के साथ
 कल जाने के लिए एकांत स्थान में जायेंगे, इस बात परियों पर यह
 का दाव, मगरी का सेना पर मार-काट मचाने हुए एक साथ दूट पाई

भिन्धि-इति कृत्वा युगपदेव पतिष्यामः, यमन्त-वाताहत-नीरमच्छ-
 दानिव च क्षणेन विट्पाषाणियष्यामः । इतस्तु छलेनास्मत्त्वामिसहचराः
 शिवं पाशैर्बद्ध्वा पिञ्जरे स्थापयित्वा तं जीवन्तमेव यशंवद् करिष्य-
 मि । परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा स्म भून् कस्यापि कर्मगतः"—
 इति कर्मान्तिकं मुख्यमानीयोत्तरयतः सांभामिरु-भट्टानवलोरु-
 म्; "धन्या भवन्तो येषां गोप्यतमा अपि विषया एव वीधियु-
 वंकीर्यन्ते । महाराष्ट्रा धूर्ताचार्या, नैतेषु भयतां धूर्तता सफला
 रयति" इत्यात्मन्येयाऽऽत्मना कथयन्, स्व-प्रभा-धर्पित-सकल-
 क्षकगणः स्वसौन्दर्येणाऽऽकर्षयन्ति च विश्वेषां मनांभि, सपद्येव
 स्थान-पट-कुटीर-द्वारमाससाद् । तत्र च स्हरिणमालां रयदुक्त्यांश्च
 पन् पुण्यनगर-निवासो गायकोऽहमप्रभयन्तं गान-रस-रसायने-
 मन्दमानन्दयितुमिच्छामोति । उदयगत्य स भूमं चारेण फाञ्चित्

शिवमूढे । यमन्तवातेन, भारतात्, अथवा नीरसान् शुक्लान्, उदा-
 नेवन्वर्णाक । उपमा । यद्य वदतीति यशंवदस्तम् । "विषयतो
 दाः सवि"ति सच् । आकर्षयन् = वशीकुर्वन् । रंजाया आधारणम् =

भीर धन भर में ही उसे वसन्त (पतसाद) ऋतु की रक्षा से गिरे लुपे
 गलों की तरह मार भगावेंगे । इस प्रकारे साहिक के नीकर, विशाखा
 को एक से गलियों से बाँध कर, निबंद में बन्द करके, भीते की ही अरने
 यद्य में कर लेंगे । लेकिन 'यह विषय ही बड़ा गोपनीय है, किता के जान
 में न पड़ने पाये' इस प्रकार उधार देते हुए देखकर, मन-हा-मन 'भाप
 लोग धन्य हैं, जिनके अति गोपनीय विषय भी शक्तों में इस प्रकार चले
 रहते हैं, पर मराठे पहले सिर के धूर्त हैं, आपकी धूर्तता इनके आगे
 सत्य नहीं हो सकती' ऐसा कहने हुए, अरने तेज से सभी परदेदारों को
 निषेध कर, अपनी सुन्दरता से सभी के हृदयों को अरनी और गोचरे
 हुए से गार्गस (जानरम) बत का चक्क में प्रभाव सेवे के दरवाजे पर
 पहुँच गये । यहाँ परदेदार से मिले नीर कहा कि पूजा नगर का निवास
 मैं हुआ को जानरम के रसायन से आनन्दित करना पड़ता है । उनका

निवेदकं सूचितवान् । स चान्तः प्रविश्य, क्षणानन्तरं पुनर्वर्तमानं गत्यगायकमवृच्छन्—‘किं नाम भवतः ? पूर्वं कदाऽपि समागतं न वा ?’ अयं स आह—‘तानरङ्गनामाऽहं कदाचन युष्माकं गणेशम् । न पूर्वं कदाऽपि ममाश्रोपस्थानं संयोगोऽभूत्, अद्य भाग्यन्यनुकूलानि चेच्छ्रीमन्तमवलोकयिष्यामि’ इति । स च ‘अत इत्युदीर्य पुनः प्रविश्य क्षणानन्तरं निर्गत्य च, विचित्र-गायकसह निनाय ।)

तानरङ्गस्तु तेनैव तानपुरिका-हस्तेन बालकेनानुगम्यमानशनेः शनेः प्राविश्य, प्रथमं द्वितीयं तृतीयञ्च द्वारमतिश्म्य, कांश्चिदङ्ग-स्वरान् सन्दधतः, कांश्चिद्वीणावरणमुन्मुच्य, प्रवालं प्रोञ्ज्य कोणं कलयतः; कांश्चिद्विचलोऽयमेतेनैव सह योग्यन्तामपरनाद

आच्छादनवन्नम् । प्रवालम् = वीणादण्डम् “वीणादण्डः प्रवालस्यादि” त्यमरः । कोणम् = वादनोपयोगिनमुपकरणविशेषम् । “मित्रण्ड

भाव समझकर उसने भीहों के दरारे से एक सन्देशवाहक को बुलवा किया । उसने अन्दर आकर क्षण भर बाद पुनः बाहर आकर गायक पूछा ‘आनन्द नाम क्या है ? आप पहले कभी आये हैं या नहीं ?’ गायक ने कहा ‘मित्र नाम तानरंग है, शायद कभी यह नाम आपके कानों में पड़ा हो । मुझे पहले कभी यहाँ आने का अवसर नहीं मिला, आज ही भाग्य ने साथ दिया तो द्वार के दर्शन करूँगा ।’ यह ‘अच्छा’ कह कर भीतर बाहर और थोड़ी ही देर में बाहर आकर उस विचित्र गायक के साथ ले गया ।)

तानरंग—मित्रके पीछे-पीछे तानपुरा राग में छिद्र यह बालक चला रहा था—ने धीरे-धीरे प्रवेश कर, पहले, दूसरे और तीसरे दरवाजे को पार कर, किसी को मृदङ्ग के स्वर साधते, किसी को सितार का गिटार उतार कर, वीणादण्ड को बोल कर, कोण (मित्रण्ड) पहनते, किसी को ‘समुरी का स्वर अविचल है, इसी के साथ अन्य वाद्यों को मिश्रित

द्वितीयो निभासः

मे]

नि वंशोरय साक्षीकुर्वतः; काञ्चिन् कलित-नेपथ्यान्, पादयोर्न-
नासामानुस्रव-
स्वरेण स्व-काकली

मलयतः; सन्मुखे च दृष्टतः पादयोर्न-
वाहकैः, अपरोनिष्ठपुताशन-भाजन-इस्तीः, अन्यैरनवगत-वालिन-
चामरैः, इतरैर्वद्वाञ्जलिभिलाटिकैः परिभूतम्, रज्जुद्वितोष्णी-
पिकामस्तकम्, मुषण-मूष-रचित-विविध-कुमुम-गुह्मल लना-

एति हिन्दी । साक्षीकुर्वतः = साक्षादर्थिता नयतः । इतरवाद्यसम्पदायै
प्रमाणता प्रापयत एति यावत् । कर्तालिकाम् = "कर्ताल" एति हिन्दी ।
काकलीम् = कर्ण कलम् । 'इपदये चेति' कोः कादेशः, गोपदित्वात्
होष् । "काकली तु कले कलम्" इत्यमर । निष्ठपुताशनम् = पनद्वयः ।
"वीकदान" एति हिन्दी । लाट्टाटिके = अधिवर्तिभासनायापलोकनधर्मनै
तु कार्यसम्पादकैः । "लाट्टाटिकाः प्रभोभांतरदा वाप्यधमभ य"
इत्यमरः । मुषणमूषेण = कुम्भतमपुर्णतन्मुना, "कलाबन्" एति
हिन्दी, रचितं वा विविधाः = अनेकप्रकाराः, कुमुमगुह्मललना =
पुष्पकविकावस्त्रयः, काली प्रतानैः = कितननैः, आहुतः = अश्रितः,

यह करते; किसी को देव रचना कर देती में गुह्मरु रचिते, किसी को कले
पर करकली सोलो से कर्ताल निकालते, किसी को कान पर टाहिना हाथ
रखकर, आँखें मूँद कर, नाक सिरोद कर, फुटनो के दल देडकर, जानी
हाथ पैला कर, बीण्ड के स्वर के साथ अपनी काकली (कर्ण कथमान)
का मिकान करते; मोरसामने, व छे तथा टाय-बावे बैठे हुए कुछ टायबूब-
बाहको, दूसरे हाथ में वीकदान किए सोतो, अन्य मिठा चीर हुआ रहे
आदमियों तथा दूसरे हाथ जोड़े लड़े पापदल जोको से चिंटे हुए, और
पर एक बड़ी टोपा लगाये हुए, कानों के टांगों से बड़े विविध दू-

प्रवानाङ्गित-कञ्चुकं महोपग्रहमेकं कोडे संस्थाप्य, तदुपरि सन्वर्तितभुजद्वयम्, रजत-पर्यङ्गे विविध-फेन-फेनिल-शीरधि-उल्लसच्छाविमज्जोदुयंत्यां तूलिकायामुपविष्टमपजलध्यानं च दर्शयति ।

ततस्तु तानरङ्ग-प्रभा-वशीभूतेषु सर्वेषु 'आगम्यतामागम्यतामस्यतामास्यताम्' इति कथयन्तु, तानरङ्गोऽपि सादरं दक्षिण हस्त-नाड्यद्वयमूचक-सङ्केत-सद्वकारेण यथानिर्दिष्टस्थानमलङ्घ्यकार ।

ततस्तु शिरसायकेषु सगर्वं सामूखं सश्रोभं साभ्रेषु सचक्षुरि-रक्षणं साक्षरः परित्यक्तं च तमालोक्तयन्तु अपजलध्यानेन स्व-तर्पणमभूदाढ्याः ।

कञ्चुकः = निचोली कपड तन् । महोपग्रहम् = महोपधानम् । "महोपग्रह" इति हिन्दी । विविधफेनेन = प्रचुरपङ्क्तिरेण, फेनिलस्य = फेनसंके-तस्य, शीरधे = शारिधे, उल्लसच्छाविम् = शोभाय, अज्जोदुयंत्याम् = पारपन्थानम् । दूधमन्त्रि यस्यां वा दूध = दूधपत्री, तूलेन तूलिका = दूधपत्री तूला, तस्याम् । "कई की गरी, लोचक" इति हिन्दी । कञ्च-पञ्चत्वननुचिन्तयन्तु विन्न-वकुल्य एवेति शब्द ।

आदरमूचकसङ्केतः = "सलाम" इति हिन्दी ।

कहिली और बेचबूरी वाली भयकन करने, तब से एक बहो-सी बसना लगे उस पर भयने दीनी साथ रखे हुए, चोरी के पदम के ऊपर, प्रचुर फेन से फेनिल कपड की शाला की मात कर रहे गहरे पर बैठे लकड़ खा देना ।

उसके बाद तानरङ्ग का चमक रसक से लबके मयमुख होकर "महोपग्रह" "महोपग्रह" से उठे । कहिले "कहिले" करने पर, तानरङ्ग ने भी लोचके हुए से लकड़ खा कर हुए निर्दिष्ट मातन भट्टाहट किया ।

कन्या लोचक के गहरे, ईश्वर, देवदारु और निन्दा के साथ लोचके लकड़ खा कर तथा निन्दा दिया दिया कर, तानरङ्ग का देखने पर, भट्टाहट लोचक के साथ लकड़ खा कर हुए प्रचुर कपड खा देना ।

MAHAMAHOPADHYAYA

Gopi Nath Kaviraj M. A.

2. A. Sigra

BENARAS

Dated 26-3-46

I have read with great interest the revised edition of the Late Pandit Ambika Datta Vyasa's work entitled "Śivaraja Vijaya." It is a well known historical romance in Sanskrit prose based on the story of the Maharashtra Chief Shivaji and written in a graceful and lucid style.

The author was a distinguished religious preacher in his time whose Hindi speeches in different parts of the country won for him a great reputation as an orator. But the present work shows him as a gifted Sanskrit writer. In the history of Sanskrit prose literature this work, though a recent production, deserves a lasting place.

It is hoped that students interested in Sanskrit studies and in the art of Sanskrit composition will appreciate it as a valuable aid.

Gopinath Kaviraj

अपञ्जलान्—विन्देशावाप्त्यो भवान् ?

तानरङ्ग—धीमन् ! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि ।

अपञ्जलः—ओः ! राजपुत्रदेशीयः ?

तानः—आम् ! धीमन् !

अपः—तन् वयमत्र महाराष्ट्रदेशे ?

तानः—सेनापते ! मम देशादनन्वसने मां देशादेशं पर्या-
टयति ।

अपः—आ ! एवम् ! त्वत्किं प्रायाः पथ्यटनि भवान् ?

तानः—एवं वसूयते !, नय्यान् नय्यान् देशानवलोकयितुम्,
नवा नवा भाषा अवगन्तुम्, नूतना नूतना गान-परिपाटीश्च कल-
सितुम् एषमान-महाभिलाष एव जनः ।

वाप्त्यः = निवासी । “कथेरत्तम्पन् कर्त्तरि निष्पे” ति ताम्पन् ।
पर्याटयति = तर्कतो भ्रमयति । एषमानः = इति गच्छन्, यवान् अभि-

अपञ्जल तां—आप कित् देस के निवासी हैं ?

तानरङ्ग—हुम् ! मैं राजपूताने का हूँ ।

अपञ्जल तां—ओह ! राजपूताने के ?

तानरङ्ग—हाँ, हुम् !

अपञ्जल तां—तो यहाँ महाराष्ट्र देश में कैसे आना हुआ ?

तानरङ्ग—सेनापति जी ! अपने घूमने के शौक के कारण मैं एक
देस से दूसरे देस में घूमता रहता हूँ ।

अपञ्जल तां—अच्छा, यह बात है, तो क्या आप अवसर पूरा
करते हैं ?

तानरङ्ग—हाँ सेनापति जी ! नये-नये देशों की देखने, नई-नई
भाषाओं को जानने, नई-नई गान शैलियों को सीखने का मुझे बड़ा
शौक है ।

भयः—अहो ! ततस्तु बहुदूरीं बहुशय भवान् । अयं स
देशो गतो भवान् ? भयतेऽतिथैल्लक्षणं तद्देशस्य ।

मानः—सोनापते ! सर्वत्रयात्पूर्वमहं काश्यां गङ्गायां संन्य-
ज्जगिनी-देशीय-काशिय-कुलाल-कृतं भीमपुर-देशमालोक्य, गङ्गा-
गङ्गाक-नदीपरिष्टं हरिहरनाथं प्रणम्य, विष्णुमि-कुल-विष्णु-
पादलिङ्ग-पुरमुत्तम्य, सीताकण्ड-विक्रमचण्डिकादि-पीठ-
पाद-पूजितं विक्रम-यश-मूचक-कुमायश-शोभितं देवगुनी-नर-
काश्या-प्रान्ते मुद्रन्तपुरं निरीक्ष्य, कर्ज-दुर्ग-स्थानेन तदशीमह-पुरा-
वा-दुर्गमङ्गदेशं दिनप्रथमागुह्य, अतिवर्द्धमानरीभव-वर्द्धमान-नर-
ण-सम्यक्-समालोच्य, यथोचित-सकभारैकभारकेषामुत्तरायणं, त-
तः

आग - इत्यादि, पञ्चमः । जगिनी-देशीय-काशिय-कुलाल-कृतं, भवान्
भीमपुर-देशं गतः । सोऽहं हि बन्धुवोजि-ना-नातिदूरे भाग्यगते । देव-
गुनी - बद्ध-नर-पादः, नर-क-देशः, काश्या-प्रान्ते यावत् । मुद्रन्तपुरं
'मुद्रन्त' इति नाम्ना । वर्द्धमाननगरम् - अग्रे 'वर्द्धमान' इति कथ्यते ।

कञ्चन-नर - नर-नो-आने बहुत बड़ा देवा-मुनी है । क्या स-
क-भार है ? न-है । न-है । न-है । न-है । न-है ।

वन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां नालानां नारिकेलानां खजूरानां च महिमा सर्वदेश-रसज्ञानां साधेडं कर्णं गृशति, यत्र च मयंकराऽऽवर्त-सहस्राऽऽकुलामुत्स्रोतस्वतीषु महोहोकारं क्षेपणीः क्षिपन्तः, अरित्रं चालयन्तः, बडिशं योजयन्तः, कुवेणीम्य-स्त्रियमाग-मत्स्य-परीवर्त्तानालोकमालोकमानन्दन्तः, अट्टप्रनटेष्वपि महाप्रवा-हेषु स्वल्पया कूष्माण्ड-फकिरुकारया नौक्या मित्राञ्जन-लिप्ता इव मसी-ग्नाता इव साकारा अन्धकारा इव काला धीवर-बाला निर्भयाः क्रीडन्ति ।

जयनशीलाः, वर्णं येना तानि । नारङ्गाणि=नागरङ्गाणि । “नारंग” इति हिन्दी । भयङ्करैः=भीतिजनकैः, आवर्त्तसहस्रैः=बहुसंख्याम्भमा भ्रमे “स्वादावर्त्तोंऽम्मसा भ्रम” इत्यमरः, आकुलामु । स्त्रोतस्वतीषु=नदीषु सहोहोकारम्=नौकादण्डप्रक्षेपावसरे तद्देशीयाः “हो हो” शब्दं कुर्वन्ति क्षेपणीः=नौकादण्डान् । “नौकादण्डः क्षेपणी स्वादि” त्यमरः । “डॉड” इति हिन्दी । अरित्रम्=“अरित्रं केनिपातक” इत्यमरः । “पतवार” इति हिन्दी । बडिशम्=“बडिशं मत्स्यवेधनमि” त्यमरः, कुवेण्याम्=मत्स्याधान्या तिष्ठन्ति ये ते कुवेणीस्थाः, स्त्रियमाणाः=आसन्नमरणाः, मत्स्यास्तेषां परीवर्त्तान्=पारवंपरिवर्तितानि । आलोकमालोकम्=समवलोक्येत्यर्थः, फकिरु=“फॉक, फॉकी” इति हिन्दी । धीवरबालानां करनेवाले विद्वद्विख्यात संतरे पैदा होते हैं, बर्षों के नीकू, आम, नारियल और खजूरों का नाम सभी देशों के रसिकों के कान में बार-बार पड़ता है, और बर्षों भयंकर हवारों मेंधरों से मरी नदियों में, ‘हो हो’ करते हुए डॉड डालते और पतवार चलाते हुए, बंखों डालते, जाल में फँसी मरणामग्न मछलियों का छटपटाना देखकर आनन्दित होते हुए, जिनके भी नही दिलाई देते ऐसे महाप्रवाहों में भी छोटो-सी कुँभड़े की पाँक आकार की नाव से, पिछे हुए अञ्जन से त्रिपे-पुते से, स्वादा में डूबे-से, और धारण कर आये हुए अन्धकार के समान काले धीवरों (मछुवे) के लड़के निहट होकर खेलते हैं ।

अप०—[स्वयं रसन्, सर्वाश्च रसतः पश्यन्] सत्यं सत्यम् !!

धन्यो मयान्, योऽल्पेनैव धनमेव विदेश-भ्रमणेः पानुरी कलयति ।

तानः—धन्य एव यदि युष्माट्पैरभिनन्द्ये !

अप०—(धनानन्तम्) अयं मयान् मूर्छना-प्रधानं गायति,
तान-प्रधानं वा ?

तानः—इदं तादृशम् ।

काल्यनुप्रेषते भिन्नाङ्गनन्तिता इव, मसीस्नाता इव, साबाप अन्धकार
इवेति ।

अभिनन्द्ये, कर्मणि उत्तमपुरुषे । मूर्छनाप्रधानमिति, अविच्छेदं स्वरात्
स्वरान्तराभिर्मूर्छना, अविच्छेदं स्वरास्वरान्तराभिस्तानः । “सुखीमवद्भाम-
विनेयमूर्छनामवेष्टमाणं मदतीं सुदुर्मुहुरि”ति बापुसम्भवेण मूर्छना कथमि-
वोद्भवा इति भाष्य एव जानातु, परिसमाजोऽनु वा वीणावैलक्षण्यं सर्वमिति
मूलवृष्टिष्ववृत्तस्थिणी । महत्यास्ततस्वरानुपायु तन्वीषु कर्मिकेण पचना-
पहनेन निर्दिष्टमूर्छनाया अख्यापाठान्माषाधेरो निरर्थक इति दास्यनिकसार्य-
भौमा गौण्यामिदमोदरशास्त्रिचरणाः । “भारोदापरोदक्रमपुनः स्वर-
समुदायो मूर्छनैव्युप्यते, तानस्वारोदक्रमेण मयती” ति मतया ।

भवति च सङ्गातघातप्रपञ्चम्—

“भारोद्देशावरोद्देशेण क्रमेण स्वरसतकम् ।

मूर्छनाद्यम्बुषार्थं हि विज्ञेयं तद्विषयिणीः ॥”

अप्र.मल स्त्री—(स्वयं रसते हुए और रसते हुए सभी अन्य लोगों
को देखते हुए) सच है, सच है ! आप धन्य हैं, जिसने इतनी कम उध्र
में ही, इस तरह विदेशी में पूरा कर इतनी चतुरता सीख ली ।

तानरंग—यदि आप जैसे लोग मेरी सपराना करते हैं तो मैं सपहुच
धन्य हूँ ।

अप्र.मल स्त्री—(धन्यवर बाद) अच्छा, आप मूर्छना-प्रधान गाने हैं
वा तानप्रधान ?

तानरंग—मूर्छना-प्रधान भी और तान-प्रधान भी ।

अप०—(क्षणान्तरम्) अस्तु, आलप्यतां कश्चन रागः ।

तान०—(किञ्चिद् विचार्य) आत्मा चेदका राग-माष्टा-गीतिं गायामि, यत्र प्रत्याभोगं नवीन एव रागो भवेदेकेनैव च ध्रुवेण सङ्गच्छेत, तत्तद्राग-नामानि च तत्रैव प्राप्येरन् ।

अप०—आः ! किमेवम् ? ईदृशं तु गानं न प्रायः श्रूयते, तद् गीयताम् ।

आलप्यताम् = आलापः कियताम् । विशकलस्य रागोदीरणमालापः ।
रागः = रज्जुकरसरसन्दर्भः ।

“योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।

रज्जुको जनचित्तानो स रागः कथितो तुभेः ॥”

रागमालाम् = तन्नाम्नीम्, गीतिम् । प्रत्यालप्य विभिन्नीभवद्गी रागैर्मात्सरूपैः सहितत्वात् । उदाह-यन्नेति । प्रत्याभोगम् = प्रतिगेषलङ्घम्, उच्चारणविषयाणां शब्दानां शरीरत्वमाश्रित्य तथोक्तम् ।

ध्रुवेण = स्थिरपदेन । सकलपादान्ते वारं वारं समुच्चारमाणत्वेन ध्रुवत्वम्, अत्र एव तथा संज्ञा । सङ्गच्छेत = सम्मेल्येत, “समोगम्म्युच्छि-
म्याम्” इत्यात्मनेपदम् । स्वरान् = निषादप्रभृतीन् ।

निषादप्रमगागधारवद्बभ्रमध्वमधैवताः ।

पञ्चमधैवमी सप्त तन्त्रीः कण्ठोत्पिताः स्वराः ॥ इत्यमरः ।

अङ्गबल मी—(थोड़ी देर बाद) अच्छा, कोई राग अलापिये ।

तानरंग—(कुछ सोचकर) अगर हुआ वा हुआ हो तो एक ‘राग-माला’ गीत सुनाऊँ, जिसमें गीत के प्रत्येक गेषलङ्घ में एक नया ही राग होगा और वे सब एक ही ध्रुव से मिलेंगे, तथा उसी में उन सभी रागों के नाम भी आ जायेंगे ।

अङ्गबल मी—अच्छा ! क्या ऐसा है ? ऐसा गाना तो अकसर नहीं सुनाई पड़ता, अच्छा गायें ।

द्वितीयो निधासः

मानपूरिकायाः स्वरान् समेत्य पातित-बाम-जानुः तान-
-मुग्धं क्रीडे निधाय दक्षपादस्योत्पितजालुनि च दक्ष-दक्ष-
-स्थापन-पुर-सरं तेनैव हस्तेन तज्जन्दकुल्या तानपूरिकां रण-
-कण्ठेनापि श्रीन् प्रामान् सम स्वराश्च समधान् । तन्मात्र-
-नैव मुग्धेष्विवाविलेपु इमां राग-माळा-भोतिमगायन्—
सखि हे मन्द-जनय आगच्छति । सखि० ॥
मन्दं मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-मुग्धं प्रयच्छति ॥

पातितं बामजानु देन सः । गायकानामवस्थानरीतिः । दक्षदक्षम्प-
-मैत्राकाय यः कूर्परः = कपोति, “स्वात्करोमिषु कूर्परे” इत्यमरः,
-मुग्धमप्यमिषिरिति यावत्, त्वस्थापनपुरस्तम् । श्रीन् प्रामान् = परब्रह्म-
-ममगान्धारान् । तथा चोक्तम्—

“यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽन्येकीभूता भवन्ति हि ।
तथा स्वराणां सन्दीरो ग्राम इत्यभिधीयते ॥
पद्मग्रामो मवेदादौ मध्यमग्राम एव च ।
गान्धारग्राम इत्येतद् ग्रामवयमुदाहरम् ॥”

समधान् = समधोक्तम् । सखि ! = आहि । मुरलीरणनैः =
दंतीत्यनैः । समधिकम् = ब्रह्मानन्दलक्षणम् । श्रीरघोऽशौ मन्दमुनस्त-

उमङ्क बाद तानपूरे के स्वरी को मिला कर, बायाँ पुटमा टेक कर,
जानपूरे की मुग्धी को मोद में रलकर, दाहिने पैर के उठे पुटले पर
दाहिने हाथ की कुइली रखकर, उसी हाथ की तबलां डुँगली
से तानपूरे को बजाने हुए तानरंग ने अपने कण्ठ से भी सीन
ग्रामों (पद्म, मध्यम और गान्धार) और निगादारि सात स्वरी को
अलापा । इतना मुनकर ही उसके मुख हो जाने पर इस ‘पराभाषा’ गीत
को गाया—
हे सखि ! मन्दमन्दन भीषुण्ण आ रहे हैं । मुग्धी की मन्द-मन्द

भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः ।
 कलित-ललित-मालती-मालिकः सुरवर-वाञ्छित-सेवः ॥
 सारङ्गैः सारंग-मुन्दरो दृग्निर्निपीयमानः ।
 चपला-चपल-चमत्कृति-वसनो विहित-मनोहर-गानः ॥
 श्रोवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रीलः श्रीदः श्रीगः ।
 सर्वश्रीभिर्युतः श्रीपतिः श्री-मोहनो गयीनः ॥

वाञ्छ-पापिजनानाम् = अविनयणाम् । भैरवरूपः = भयङ्करः । तन्
 प्रकृतीनां राक्षसायमानानामन्त्रालम्बान्मृतीनामपि पापित्वासेपामपि भै
 रवेति ध्वनिः । सताम् = सत्त्ववतां सज्जनानाम्, शिवादीनाम् । कलित
 ललिता मालती-मालिका येन सः । सुरवरैः = इन्द्रादिभिः, वाञ्छिता सेवा यस्य
 सः । सारङ्ग इव सुन्दरः । “सारङ्गा मृगपक्षिणोः” । सारङ्गैः, दृग्निर्निपीय-
 मानः = सज्जलमं धीरयमाणः, चपलेव = विद्युदिव, चपला चपल-
 तिर्यस्य ठारयन् चमत्कृतकवक्यं, वसनं यस्य सः । विहितं मनोह-
 रम् = भोतृभिराकर्षकम्, गानम् = गीतिर्वेन सः । श्रोवत्सेन = श्रो-
 त्रेण । लाञ्छितः = विहितः । श्रीलः = श्रीमान्, “श्रीलः श्रीमान् निगद्य
 वत्सल” इत्यमरः । भिव = चन ददातीति श्रीदः । भियाः = स्वयन्-
 ईशः । सर्वश्रीभिः = सर्वाभिः शोभाभिः । गयाम् = वाणीनाम्, ईशः =

ध्वनि से वे भक्ति आनन्द प्रदान कर रहे हैं । ये भगवान् भक्तियों को हरि-
 के लिए भयङ्कर और सज्जनो को सुख देने वाले हैं, उन्होंने सुन्दर माण्डो
 पुष्प की माला पहन रखा है । देवता लोग भी उनकी सेवा करने को
 कामना करते हैं । वायदेव के समान सुन्दर भक्तियों को हरिण रक्षक
 लगाकर देना रहे हैं । उनके वन्द विष्णु के समान चमत्कृतकवक्य
 करते हैं और वे मनोहर गाना गा रहे हैं । उनका हृदय श्रीराम नाम के
 चिह्न से सुशोभित है, वे श्रीमान्, सर्वाभि के देनेवाले, स्वामी के स्वयन्,
 व गी शोभाओं से युक्त, स्वामी के पति, भी को मोहित करनेवाले और

द्वितीयो निश्वास.

गौरी—पतिना सदा भावितो घर्हिष-यद्-करोट. ।
 वनककशिपु-उदनो घर्हिष-प्रथनो विदत्-दशानन-कोट. ॥
 अथ गतायदेश भूत्या अतिनरा प्रमत्तेषु पारिपदेषु, ससाधुवादं
 दुर्मन्त्रकः, वेदविचारवर्तेति यावत् । गवा = इन्द्रिगणाम्, ईशः,
 निर्वहतिदिदि पा । गयाम् = इन्द्रावनवद्वाना, स्वामा वा । गौयाः =
 रम्यतनवायाः, पन्या = धमन्ता विवेन । भावित. = प्यतः । घर्हिष-
 यद्-करोटः = मरुर्गिष्कमुकुरः । वनककशिपुउदन = दिग्विपक्षिपु-
 रंतायः, घराटः । घर्हिषप्रथन = वनिक्रमो, वायवः । विदत्तः =
 नाशितः, दशानन एव कोटः = शुद्धबन्तु, येन स, भ्रंरामाः । अथ
 भैरव-कलित-सारंग-भोगौरी-नामानि गगाणाम् । तत्र भैरवः प्रथमा
 प्रातःशक्तिश्च । अथ सप्त स्वरा अपेक्षन्त इत्यर्थं सम्पूर्णं इत्युच्यते ।
 मध्यमापञ्चमा अथ प्रथमानि । हस्तिते कल्पमपेक्षतो निम्नको गान्धारनिषादी
 तीव्रता । अथ षष्ठ्यमो नापेक्षन् इति वैशिष्ट्यम् । सारङ्गे मध्यमनिषादी
 नेत्रको कल्पमपेक्षतो चोपक्षी । गान्धारोऽथ निम्नो वर्जितः, पैवलोऽपि
 केवलमपेक्षतोऽपेक्षितः । धीरागोऽपि सम्पूर्णः । कल्पमपेक्षतो निम्नको, गान्धा-
 रनिषादापुष्ष्णी, मध्यमभोगपञ्चा वदति । निम्नमप्यमपेक्षतो चानुर्यङ्ग्यम् ।
 पञ्चमशास्त्रोदे गान्धारपेक्षतो वर्जितो, तथापि विज्ञाः मन्त्रवन्त्येव वदन् ।
 गौरी सम्पूर्णं उचिषो, कल्पमपेक्षतो निम्नको गान्धारमप्यमपेक्षतोऽपि चोपक्षी ।
 आरोहोऽथ निम्नमेव कल्पमपेक्षतो, वदति । मन्त्रवन्त्येव वदन् ।
 मूनीयम् । सर्वतज्ज्ञाविदा योऽथ तु निम्न-मात्रमप्यमपेक्षन् ।
 वेदकाणो के भाविष्यतक है । भा. एतद्. ३. उनका सदा प्यान विवा
 करते है, ये मोर मुकुट धारण करने करते, दिग्विपक्षिपु का लक्ष करने
 करते, घर्हिष का विहंग करने करते अथ एतन् कल्प क दे वो माने
 करते है ।
 इतना ही सुनकर सब समासतो के अर्थसिद्ध प्रसन्न हो करने लगे

६ श्री ६

निर्माणहेतुः

“गद्यं कर्त्तव्यं निर्वर्णं वदन्ति”

मोक्ष एवमप्यप्यशम्य चमत्कार-विशेषाधायकत्वे सर्वोऽपि
मोक्षं प्रशस्यते, न च गद्ये तथा सुलभं सौकुम्भम्; गद्ये तु सर्वा-
ङ्गीत-सौन्दर्यमुपलभ्येत चेत्, तदैव तन् प्रशंसा-भाजनं भवेद्
भव्यानाम् । पद्ये छन्दःपारबन्धान् स्वच्छन्द-पद-प्रयोगो न भव-
तीत्यनिगृह्यताऽपि कविना-प्रसङ्ग-प्राप्तं स्वामाधिकं स्वल्पमपि यव-
नीयं क्वचिद् विस्तार्यते, क्वचिद् बहुवि नियन्त्रितं संक्षिप्य क्षोदिष्टं
विधीयते, क्वचिच्च द्वित्र-स्वामाधिक-पद-प्रयोग-समापनीयान्यपि
पारस्परिकान्ताप-ससक्त-प्राप्त-याक्यानि जटिलीक्रियन्ते । गद्ये
तु यदि किमपि तादृशमस्यामाधिकं स्यात्; तन् कवेरेव निर्वर्ण-
महदवद्यम्—इत्यादिकारणैः पद्यापेक्षया गद्यमेव महामान्यं भवति,
भवति च दुष्कारमपि गद्यकाव्यमेव । अत एव शुद्ध-पद्यात्मकेषु
यत्पु महाकाव्येष्वपि गद्यकाव्येष्वपि च प्राप्येष्वपि गद्यपद्यान्म-
केषु चम्पू-नाटकादिषु चानेकं रूपलभ्यमानेष्वपि, शुद्ध-गद्य-काव्यानि
तथा नाऽऽप्तादन्ते । अस्माकं महामान्या धन्याः सुबन्धु-बाण-
दण्डिनो महाकवयो ये वासवदत्ता-कादम्बरी-दशरुमारचरितानि
सुधामपुराणि सदा सद्गुणमाख्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्य भारत-
वर्षं सप्तद्व-प्रमोद-वर्षं ध्वजिपतः, येषां चोक्ति-पर्यालोचन-प्राप्त-
पर्याप्त-व्युत्पन्नयोऽसद्व्याख्याना अद्यापि वर्तन्ते, वर्तिष्यन्ते च
चिराय । पूर्वभट्टार-हरिचन्द्र-प्रमृतिभिरेवैर्महाकविभिश्च प्रचा-

शुद्ध, स एव दीन दुःख-दाय-दहनः, स एव स्वधर्मरक्षण-
क्षमः, स एव बिलक्षण-विचक्षणः, स एव च मादृश-गुणि-गण-
गमद्गताऽऽमही वर्तते ।

अथ अपजलदाने—“तु किं शिर एव एवंगुण-गण-विशिष्टो-
तिष्ठे? एव वा पौरुषरोऽस्ति?” इति सचकितं सभयं सतकंसरोमोद्गमं
कथयति, किञ्चिद्दिशायैष नोति-कोशल-पुर-सर गौर-पुनरवादीतः
(नगयन् ! सामान्य-राजधन्यस्य पुत्रः शिरयोरो यदि नाम
नाभयिष्यस्वयमीदृश ऊर्जस्वलाः, तत्कथं स्वर्गदेव-सदृशं सहस्रं
शान्यन् ? नद्द्वारा समस्त कल्याण-प्रदेशं कल्याण-दुर्गं च स्वहस्त-
गतनकरिष्यन् ? कथं तोरण-दुर्ग-भोग-भाजनतामकलयिष्यन् ?
कथं तोरण-दुर्गाद् दक्षिण-पूर्वस्यां पर्यंतस्य शिखरे महेंद्र-

भेदः । दीनानाम् = अनामानाम्, दुःखदायस्य = स्तेयविनिवृत्त, दहन =
विनिवृत्त । स्वधर्मरक्षणे सक्षम = होत्सहः । एवंवाचो धनघनः ।
बिलक्षणविचक्षणः = विशिष्टविद्वान् । गुणिनां गणस्य गुणप्रदणे, आमही ।
भुविनास एतु ।

पौरुष के सच्चे पारता है, वे ही दानों के दुःख रुख वन के लिए दारागि
के समान हैं, वे ही अपने धर्म का एका में उन्माह रखते हैं, वे ही अस्तु
विद्वान् हैं और वे ही इन जैसे गुणियों के गुणों के कदरदान हैं ।
इसके बाद अपजल खाँ के ‘तो क्या वह शिवाजी इस प्रकार के
[नो से मुक्त भार इतना पर है’ यह आभयं, भय, अनुमान और रोमांच
के साथ कहने पर मानों कुछ सोचकर, नोति कोशल पूर्वक मोर्छित से
पुनः कहा—

(पुनः, राजा के एक साधारण कर्मचारी के लड़के शिवाजी यदि स्वयं
इस प्रकार के तेजस्व न होते तो स्वर्गदेव के समान साथी कैसे पाते और
उसके दाप सारे कल्याण प्रदेश और कल्याण दुर्ग को इतना गत कैसे कर
लेते । तोरणदुर्ग = अनाभ भोग्य कैसे बनाते, और तोरणदुर्ग से दक्षिण-

ऊर्जस्वलाः = वटशाला । दक्षिणपूर्वस्याम् = दक्षिणस्याः पूर्वस्याम् ।
 रिशोर्यन्तरान्नं ता दक्षिणपूर्वा, तस्याम् । महेन्द्रमन्दिरस्य = देवेन्द्रमन्दिरस्य ।
 दनस्य, रण्डमिव = अशमिव । धर्षितः = भयं प्राप्तिः, अस्मितः ।
 तम् । उपमन्युः प्रिययाज्ञेयं न्यनक्ति । दमरुदुष्कारेण, तां विदुः ।
 भगः = शिवो यस्मिन् । कथं वा प्रतापदुर्गं निरमापयिष्यदिति सन्धिः ।
 प्रतापदुर्गं विधिनष्टि तपनीयस्य = शिवस्य, शिवनिर्गता - दमरुदुष्कारेण ।

कुल-विधीयमान-परस्तहस्य-परिष्कृतं धूमजगदोभूयमानानि-
 भय-पटल-निर्मथित-महाकाशं प्रताप-दुर्गं निरमापयिष्यत् ? कथं
 वा 'आगत एव शिष्योः' इति श्रमेणापि सम्भाष्य अम्यपिरोधिषु
 केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विस्मृत-शस्त्रास्त्रा पलायन्ते,
 इदं महाशामाऽऽकुञ्चितोदरा त्रिशिविन्धवामसो नम्रा भवन्ति,
 अपरं च सुपुरुषा दशनेषु तुषंमन्वाय साध्रं प्रणिपात परम्परा
 रचयन्तो जीयन् याचन्ते ।

तदस्तस्य महाशामसमयगत्य किञ्चिज्ज्ञेति इव तदुज्ज्वला धावहे-
 षानादुल्लस्य किञ्चिद्वरण-जयनं इव, दक्षिण-हस्ताङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां
 परिभृजति ययन-तेजापती, तानमग्नः पुनन्यवेदयन्—

कुटेन = समूहेन, विधायमानाः परस्तहस्याः परिष्कृताः = मण्डलानि पर-
 स्तः । धूमजगदिति धूमेन दोभूयमानानाम् = यद्य सञ्जलताम्, अनेकेषां
 भयानां पटलेन निर्मथितः = विदीर्जितः, महाकाशं येन तम् । महाश-
 सेन = महाभयेन, आकुञ्चितानि = कंठमानमायन्ति, उदरणि येषां ते ।
 भव एव शिष्योः शिष्यानि दासानि येषां ते । याचन्ते = प्रार्थयन्ते ।

एक हाथों वाले एडकों से लड़ कर-कर कर लड़ बिदे वाले वाले,
 महाशो हुई भयानों से महाकाश को मथने वाले यतारगद को ही डेंते
 पनवा लेते । अथवा 'ये भी शिष्यो भी गये' यह भयपथ समतकर भी,
 इनके विरोधियों में कुछ मूर्च्छित होकर कवागिरपड़ते हैं । कुछ घादाद भूय
 कर भाग क्यों लड़ें होते हैं । कुछ डर के पारे पेट क इय हो जाने भव-
 एव परनों के लोले हो जाने से जने क्यों हो जाते हैं । और दूसरे ऐसे
 हैं हाथे दाँतों में तुण दबा कर, बार-बार प्रणम करने हुए गिदगिदा कर
 जीवन मिथा क्यों मागने लगते हैं ।

तब शिष्या की महाप्रताप को जानकर, परम सेनारति के कुछ डर
 से जाने पर और शिष्या की दुष्मनी को अवहेलना मुनकर कुछ कुछ
 से हो जाने पर, तथा दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी से मूँठ के अग
 भाग पर हाथ करने पर, तानमग्न ने पुनः निवेदन किया—

परन्त्यश्च सिद्धेन सह शिवस्य साम्मुख्यमस्ति, तन्मन्ये इत्यन्तः
मनवेला तत्प्रतापसूचय ।

तत् कर्णे कृत्वा सन्नुष्ट इव सङ्ख्यराट्म्यं सेनापतिद्वय
अथात्र संग्रामे कस्य विजयः सम्भाव्यते ?

स उवाच—धीमन् ! यदि शिवस्य साहाय्यं माक्षाच्छिवः
न कुर्यात् ; तद् विजयपुरम्येव विजयः ।

अथ सहासं सोऽग्रवीत्—को नाम स्वपुष्पायितः शशशृङ्गायितः
कमठी-स्तन्यायितः सरीसृप-भ्रवणायितः भेकरसनायितः वन्ध्या-
पुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां च एतं शं-
स्माभिः पादौघद्वया चपेटेस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते ।

अस्तमनवेला, तत्प्रतापरूपसूर्यस्य समाप्तिवेलेद्वयः । सूर्यस्तोदयो
न भवतः, केवलं तत्सङ्ख्यवासिभिस्तदनवलोकनेन तादृशमन्तराल-
एवाऽऽरर्पयते । तदुक्तम् “नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः नर्षदा मत” इति ।

स्वपुष्पमिवाऽऽचरितः स्वपुष्पायितः । स्वपुष्पम्, शशशृङ्गम्, कमठी-
(कच्छपी) दुग्धम्, सरीसृपभक्षणम्, भेकरसना, वन्ध्यापुत्रचैत्यसम्-
बालीद्वयस्तुनि । दर्शयितुं न सन्त्येव भूतनाथः सदाशिवोऽपि नास्तीतिर्यः ।

‘लेकिन आज सिद्ध के साथ शिवाजी का सामना हुआ है, इसविषे
मेरी समझ से यह उनके प्रताप-सूर्य के अस्त होने का समय आ गया है।’
यह सुन कर सन्नुष्ट-सा यवन सेनापति बोला—‘अच्छा, इन युद्ध में
किसकी जीत की सम्भावना है ?’

तानरग ने कहा—‘हुजूर ! अगर शिवाजी की सहायता स्वयं छद्म
की ही न करें तो बीजापुर का ही जीत होगी ।’

तब हँसते हुए अफजल खाँ ने कहा—‘भला गगनकुमुद-सा, नरगो-
के सींग-सा, बलुई के दूध-सा, साँप के कान-सा, मेंढक की बीभ-सा औ-
र तिल के लडके-सा छद्म भी कोई चीज है जो उसकी रक्षा करेगा । देखन
हो रक्षियों से बाँध कर हम लोग उसे पण्डित मारते हुए बीजापुर ले
वेंगे ।’

—इति स कष्टमाकण्ठं, “स्मार्द्धं भगवन् !” इति कथयति तान-
 भो, अभिमान-परयशः स त्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत्—भो-
 भो योद्धारः! मूर्खोदयान् प्रागेव भवन्त पञ्चापि सहस्राणि सादिना
 दृष्टापि च सहस्राणि पत्नीनां सज्जीकृत्य पुञ्जाय तिष्ठत । गोपिनाथ-
 पतिवत्-द्वाराऽऽहूतोऽस्ति न्या शिव-चराक, तद् यदि विभक्त्य
 न समागच्छेत्, ततश्च यद्व्या जीवनं नप्याम, अन्यथा तु
 मदुर्गमं धूर्त्तं करिष्याम । चक्षुषेयं स्पृष्टुमीर्णं राजनीति-विद्वद्भ्यः,
 तथाऽपि महाविमानु न प्रतीक्षते विवेकम् ।

तद्वशात् समस्तक-कृष्णान्दोलनम्—“यदाहाप्यते यदाहाप्यते”
 इति वार्त्ता धारासपातगिरि तनापयन्तु पारिपर्येण, “गोपनीयोऽयं

सादिनाम् = अशारीरिणाम् । “अशारीरस्तु सादिन” इत्यमरः ।
 पत्नीनाम् = पदात्त नाम् । “पदातिगतिवत्पदातिवत्तद्वत्” इत्यमरः ।
 विभक्त्य = विभक्त कृत्वा । समस्तक-कृष्णान्दोलनम् = सविरोदादिका-
 वद्वाननम् । क्रियातिरोपणम् । अदुर्गमं दुर्गमं भवन्तीति दुर्गम-
 मानास्तेषु । “न्यातिव्यो भुवन्वेतांश्च हत्” इति सूत्रेणभूतवद्रापविषये

— तानरग के कष्टपूर्वक यह बात सुनकर हुम् । हो सगता है देना ही
 हो करने पर, अभिमान के कारण आत्म सवम खोकर भगवत् को ने
 अपने साधियों को सम्बोधित कर आशा ही । भो योद्धाभो ! भाव को
 पञ्च रूपद्वय से पहले ही पानी हवा प्रदुस्वारी और दमो हवा प्रदु
 सेनिका को सुसज्जित कर युद्ध करने के लिए तैयार रहना । गोपिनाथ
 पतिवत् द्वारा मैंने बेचारे शिवरात्र को बुझाया है तो अगर यह दिशाम पर
 के आ जाय तब तो बौब कर जोदिन हो के पलेने अन्यथा दुर्गं संहित उसे
 भूल में मिला दगे । यद्यपि इस प्रकार सुदृढ-सुदृढ करना राजन के
 विद्वद् दे, फिर भी मेरा आवेद्य (बोध) विवेक को परवाह नहीं करता ।
 यह सुनकर, सभासदों की सिर और दाढ़ी हिला-हिला कर ‘ओ भाग्य,
 ओ भाग्य’ दो मानों साधियों की मूमलापार वृत्ति से स्थान-स्थ करने

वृत्तान्तः कथं स्पष्टं कथ्यते ?” इति दुर्मेनायमानेधिव च जम्
 देव प्रविश्य सहेजोत्तम् “श्रीमन् ! व्यत्येति भोजनसमयः—
 श्रुत्वा “आ ! एवं क्रियेत” इति सोत्प्राप्तं सविस्मयं तदूर्वाङ्ग
 सोपयहताडनमुच्चार्य सपरान्तात्—

“... तन्त्रा-परयत्ने इव गोपीनाथे, शिवयोरः शरीर
 सृत्य प्रणम्य, उपविशत्युच्यते—अहो ! भाग्यमरमाकं यदा
 पुष्पादृशा भूदेयाः स्वरचरणरजोभिः पाययन्ति—इति ।

कथं चानन्त, भाग्यमरमो ! मूर्धन = पाककथा । सोत्प्राप्तम् = प्राप्त
 सह, क्रियाविशेषणम् । “सोत्प्राप्तः समताकस्मितम्” रागना ।
 मूर्ध्वाङ्गभूतनम् = मूर्ध्नासनेन सह । सोपयहताडनम् = उप-
 प्रशारेण गच्छन् । मूर्ध्नाङ्गानिदं ताण्डव गवम् ।

रजनेन = दुर्मेन, सविस्मयम्, पयङ्गिकाम् = लघुपयङ्गम् । मधि-
 मिति वाक्यम् । तन्त्रा-परयत्ने = निद्रापूर्वां यदापीने ।

तथा ‘यह सोपन-य वात तुझे आस केने वदा जा रही है’ यह सोप न
 तुझे नाताइ मा होने पर, एकाएक रमोदये ने प्रवेश करके कहा, ‘तुझे
 आने का वक्त बंन गया है’ । यह मुनदा भोजन मुकगदर, निमेषपूर्वक
 गेदिस कर, समनद पर हाथ पटक कर ‘मोह ! क्या ऐसा है’ यह कहकर
 को ‘यह आदयेगा’ कहकर बिदा कर सेनासति ने अन्दर प्रवेश
 र ताननस विन कामें मे आशा या उसी से वापस लौट गया ।
 यह उतापदुर्गे में जब मोन नाथ पविटन भोजन कर के, एक पीते
 को रजने पर लेट बैठ रहे थे, तिसका पीरे में जाकर, उन्ही प्रणम कर
 देड गेदिस कर के—‘अहो ! भाग्यमरमाक है कि आधे से प्राकृत ने
 आने का वक्त मे वसारे पर हो पड़े है दिया ।’ फिर उन दोनों में एक
 पर आकर बैठे ।

अथ तयोरेषमभूयन्नालापाः ।

गोपीनाथः—राजन ! कोऽयं सन्देहः ? सर्वथा भाग्यवानसि,
परमात्मनो नाहं पण्डितत्वेन कथित्वेन वा समावातोऽस्मि, किन्तु
दयनराज-दूतत्वेन । तन् भूयता यदहं निवेदयामि ।

निचयोरः—शिव ! शिव ! खड्ग-रुद्र-गन्धिदमुखा, जेपा
श्रीमता चरणेनाद्रितं विष्णोर्गणं यत्तत्त्वलभैर्भूय-मुद्रयेव मुद्रितं
विभक्तिः न तेषां भाव्य-कुल-कमल-दिवाग्गाथां दयन-वैद्य-
कलङ्क-पद्मो मुच्यते, तं शृण्वतोऽपि मम स्मृतं इव कथी । तथाऽपि
पुलीना निरभिमाना भवन्ति-इति आनीत-वेत् कश्चिन् सन्देशः,
तदेव आज्ञाप्रता श्रीमद्यज्ञ-कमल-चन्द्रोक्तः ।

गोपीनाथः—घोर ! कठिरेष काल दयनाऽऽकामोऽयं भारत-

रतिवदमुखा, निवेद्यार्थक, खड्ग-रुद्र-गन्धिदमुखा, प्रतिप्रेरयोः
शाचा कथा" । परमाना केन्द्रयम्=विद्वत्स्य भावः, दामता, एतेष
कलङ्क-पद्म । स्मृतं इव=इति इव । पुलीनाः=सदृशः ।

गोपीनाथ—इसमें क्या सन्देह ? आप सम्मुख भाग्यवान् हैं, लेकिन
उ समय में पण्डित या कवि के रूप में नहीं, बल्कि यमराज के दूत के
रूप में आया हैं, अतः मैं जो निवेदन करता हूँ—से मुनिवे ।

निचयोरः—शिव ! शिव ! ऐसा मत कहिये, जिन भाव-रस-र
गण से अद्रित होने से विष्णु भगवान् का कलङ्क-पद्म भी मुद्रित हो
उ मुद्रित का योग्य होता है उन भाव-कुल-कमल-दिवाग्गाथां दयन-वैद्य-
कलङ्क-पद्मो मुच्यते का चार्करी रूप कलङ्क-कथक योग्य नहीं है, यह दूसरा बात है कि पुलीना
होते हैं इसलिये भाव कोई सन्देश लावे ही, तब पुलीना का सन्देश ।
"पुलीना के भवन हम वन को आकाश की दिशि ।

गोपीनाथ—शिवर, यह कलङ्क-पद्म, खड्ग-रुद्र-गन्धिदमुखा

भूभागः, तज्जात्माकं तथा तानि तेजानि, यथा वनयामि । माम्प्रतं
 विजयपुराधीश-चित्तोर्गा भूति भुञ्जे दंत तदाज्ञामेव परिपाल-
 यामि । तत् श्रूयतां तदादेशः ।

शिवचोरः—आर्य ! अवदधामि ।

गोपीनाथः—कथयति विजयपुरेश्वरं यद्—“वीर ! परित्यज
 नयामिमां चञ्चलतामस्माभिः सह युद्धस्य, त्वदपेक्षयाऽप्युन्नमधिकं
 यलिनो वयम्, प्रवृद्धोऽत्र कोपः, महती सेना, बहुधा दुर्गाणि,
 पद्मश्च वीराः सन्ति । तच्छुभमात्मन इच्छसि चेन् त्वकृया निखिलां
 चञ्चलताम्, शस्त्रं दूरतः परित्यज्य, कप्रदतामर्द्वाकृत्य, समागच्छ
 मत्सभायाम् । मत्तः प्राप्त-पदस्त्रिं जीविष्यसि, अन्यथा तु सदुर्दशं
 निहतः कथावशेषः संवत्स्यसि । तन् केवल त्वयि दययैव सन्देशं

भूतिम्=जीविकाम् । अवदधामि=सावधानोऽस्मि ।

आक्रान्त है, इसलिये हम लोगों में बैसा आप वर्णन कर रहे हैं बैसा तेज
 नहीं रहा, इस समय बीजापुर के मुल्तान द्वारा दो गई जीविका (वेतन)
 से अपना निर्वाह कर रहा हूँ, अतः उन्हीं की आज्ञा का पालन करता हूँ ।
 अतः उनका आदेश मुनिये ।

शिवाजी—आर्य ! मैं सावधान हूँ ।

गोपीनाथ—बीजापुर के मुल्तान कहते हैं कि—

“वीर ! हमारे साथ लड़ाई छानने का इस नई चञ्चलता का परिमाण
 कर दो, हम तुम्हारी अपेक्षा बहुत अधिक बली हैं, हमारा कोप बहुत
 समृद्ध है, हमारी सेना बहुत बड़ी है, हमारे पास बहुत-से किले हैं और
 बहुत-से योद्धा हैं । अतः यदि अपना कल्याण चाहते हो तो सारी चञ्चलता छोड़
 कर, शस्त्र का सर्वथा परित्याग कर, मुझे कर देना स्वीकार करके, मेरी
 सभा में आ जाओ । मुझ से कोई बड़ा-सा पद पाकर बहुत दिनों तक
 जीवित रहोगे । अन्यथा दुर्दशा करके मारे जाओगे और तुम्हारी सिर्फ कहानी
 ही रोप रह जाएगी । अतः सिर्फ तुम्हारे ऊपर दया कर के ही सन्देश भेज

[विष्णु]

द्वितीयो निश्वासः

प्रेषयामि, अग्नीकुह । मा स्म घृष्टायाः, प्रसविन्या रजतश्वेतां पश्व-
पह्तिमधु-यवाह-दुर्दिने पातय"-इति ।

(शिष्योः—भगवन् । कथयेदेष कश्चिद् यवनराज, परं किं
मयानपि मामनुमन्यते—यद् ये अमदिष्टं यमूर्तीभङ्गकया मन्दि-
राणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि पङ्कग्रीह्य, पुराणानि पिपा-
येदपुन्यकानि विदार्य च, आर्यवंशीयान वलाद् यवनीकुर्वन्ति,
तेषामेव चरणयोरञ्जलिं यद्वा लालाटिकतामङ्गोदयाम् ? एवं चेद्
पिद् मां कुल-कलहं जीयम् । यः प्राणभयेन सनातनधर्म-द्वेषिणा
दासेरपता पश्येत् । यदि पाहमाहवे श्रियेय, य-येय, ताहनेय वा

प्रसविन्याः=जनन्याः । रजतश्वेताम् कृष्ययवलाभ । पश्व-
पह्तिम्=नैऋत्यभरणम् । अधुद्रवादिज=अस्तुधारया दुर्दिने =
गरिते । मेषघृष्टान्नाहार दावरमन् सतणया प्रयुक्तम् । अस्मानिष्टं तस्य तव

पश्यणीकृत्य=दावरमन् इत्य । "पश्यणः दावरमन्" इत्यमरः ।
दासेरपताम्=श्रुतताम् । "कृते दासेरपतासेवशात् शोषकधेरपता" इत्यमरः ।
श्रियेय, य-येय ताहनेय वा, क्लृप्तं पश्येत् । अथ अहमिति कर्म ।

यह है, उसे रजतश्वेता करो । यही मां का दाँदा के समान रूप में यवनिधि
को भीमियों की सही में मत दुनाओ ।
/ शिष्याजी—महाशय ! कोई यवनराज ऐसा भले ही कहे पर क्या आप
भी इसे यह अनुमति देते हैं कि जो हमारे हस्ते का मूर्तिधो को तोड़कर,
मन्दिरों को मलिनकर कर, तीर्थस्थानों को मलिन का करता वनाकर, पुराणों
को पीन कर, वेद की पुस्तकों को बाइकर, आर्यवंशियों (हिन्दुओं) को
यवनीकुर्वन्ति इत्यस्मान् वनाहे है हमारी के चरणों में कञ्जों चढ़ाकर,
उनका पादपद दण्ड कर ? यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझ कुलकुल कर
को विचार है, को अपने पादों के ओह से सनातन धर्म के दुश्मनों का
कामी करे । यदि मैं कुछ ऐसा करूँ, तो हमारा जो पश्येत् कि

तदेव धन्योऽहम्, धन्यो च मम पितरौ । कथ्यतां भवादृशां
चिदुगमत्र सा सम्मतिः ?)

गोपीनाथः—(विचार्य) राजन् ! धर्मस्य तत्त्वं जानामि, तत्राहं
स्यसम्मतिं कामयि दिदर्शयिष्यामि । महती ते प्रतिज्ञा, महत्त-
वोद्देश्यमिति प्रमोदामितमाम् । नारायणस्तव साहाय्यं विदधानु ।

शिवराजः—रुणानिधान ! नारायणः स्वयं प्रकटीभूय न
प्रायेण साहाय्यं विदधाति, किन्तु भवादृश-महाशय-द्वारेण । तन्
प्रतिज्ञायना काऽपि सहायना ।

गोपीनाथः—राजन् ! कथ्यतां किमहं कुर्याम्, परं यथा न
मानयमं भूजेत्, तथैव विधास्यामि ।

शिवराजः—ज्ञानं पापम् ! मोऽत्राधर्मः ? केवलं श्रोत्रस्मिन्नुद्यान-
प्रान्तस्थ-पट-द्वारे यवन-सेनावतिरपजलम्यान् आनेयः; यथा
दिदर्शयिष्यामि—यद्यपि नृनिष्ठानि । प्रमोदामितमाम्—आत्यन्तं प्रमोदामि ।

आहं तो मेरा अतीनाम है और मेरे माता-पिता पण्य हैं । कहिये आप
कैसे विद्वान्तां क. इन विषय में क्या सम्मति है ?)

गोपीनाथः—(विचार कर) राजन् ! आप स्वयं धर्म का रास जानते
हैं, इस बारे में अन्तः आहं या रास नहीं देना चाहता । आपका प्रतिज्ञा
और आपका उद्देश्य बहुत बड़ा है, इससे मुझे आत्यन्तिक प्रसन्नता है ।
मम गान् दुष्टारा महारत्न कर ।

शिवराजः—हम निजान ! मम गान् प्रायः सर्व प्रकट होकर नहीं,
यान् माता क कन्या महारत्न क दाग दा महारत्न करने हैं । अतः
आप कुछ महारत्न कन्या का प्रतिज्ञा कहिये ।

गोपीनाथः—राजन् ! कहिये, मैं क्या कहूँ ? लेकिन यिनसे मुझे
ज्ञान का रस कहिये ।

शिवराजः—जान ! 'जान ? जान ?' इनसे अर्थ या रास का
कहिये ! अतः, कन्या इत्यादि कहिये किन्तु रेखने से न वेदने से न जानिये

तोऽपि महाकाव्य-सञ्चारो न चिराय स्थितिमकलयन् । भारताभि-
जन-भाषाकविभिरपि च प्रायः पद्य-प्रकृतिकैरेव समभावि-इति
जगत्प्रसिद्धेः मूरदास-श्रमृतिभिरपि पद्यान्वेव निबद्धानि । साम्प्र-
तन्तु समय-महिम्ना भारतीय-वर्तमान-भाषामु बहुधा गद्यरू-
प्यानि धिरच्यन्ते । वङ्ग-गुर्जरादि-भाषामूपन्यामैरेव व्याप्ता विप-
णयः । हिन्दीभाषाऽपि च प्रत्यहमतिशयमासादयति गद्यसोपाने-
ष्वेव पदाधाने । परं न केवलं प्राकृतिक-गिरां गुरवो गीर्वाण-
गिरि व्युत्पत्तिगरीयांस उपलभ्यन्ते, न वा कांश्चिद् धन्य-धन्यान्
विहाय संस्कृतसाहित्य-व्युत्पन्ना एव, इतर-भाषानुरक्ता विशेषतोऽ-
वलोक्यन्ते । अत एव भारताभिजन-भाषा-कथयः प्रायः स्वप्नमान्
साक्षात्संस्कृतसाहाय्येन शोधयितुं न पारयन्ति, न वा भाषाकवि-
समाहतान् नवान् नवान् मनोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान्
पथोऽनुमनुं संस्कृत-साहित्य-वैभवेषु च निर्धीन् धर्षयितुं संस्कृतज्ञा
एव प्रायशः पारयन्ति । कदाचित् वृन्दारक-वृन्द-वाग्यां गद्यकाव्य-
प्रचार-दीर्घन्यस्येदमेव प्रधानं कारणं स्यात् । महादेवमुपहासा-
मरुं विहस्यन् वद-मण्डूक इव महापाराधार-पारमासादयितुं
यत्नमान्मादशं कवि-कीशल-निकृपायितं गद्यकाव्यं मादशः क्षोदो-
यान् जनो रिचयितुं संवृत्त इति । काव्यामरं मा स्म भूत तादृग-
भाव-विषदृक्, मा स्म वा पुनर् कस्यापि मोद-विशेषम्, परं
मया तु सन्ततनरमं-धूर्धुर-शिखराज-वर्गनेन रसना पायितं,
प्रमद्वनः मधुपदेन-निर्देशः स्व-प्राप्त्यर्थं सकलितमेव, ऐतिहासिक-
काव्यरुचीं स्वमिष्टाभि शशिनान्येव, निरममत्पूजेतः पराशर-
पराशरार्तिनिरुपासना संस्कृतमात्रा मेवितैव, यधुतो निगोत्र्य
सर्वतोऽपि माशान्ता पोषण-पूर-पूजैरिव-दृक्पानेदजीवयन्ती पारि-
जन-कुलम-वर्षमिष्टिव वचनेदृक्दशन्ती जननी मारुती समारा-
दिनेव, स्या पर्जन्यैश्च समामादिनेव । भवभूतिजगन्नाथादीनां

मै विदित जेवनाकी वि. १०५ विधानाद्वारा ।

मोरीनाथ—यह तो सच है ।

मैं तो उसे जोड़े लायेन था विधवा भद्र दण्डविधा का लाया अभू-
षण से विधवा भद्र दण्डविधा का लाया अभूषण लाया अभूषण
मोरीनाथ—मैं तो सच है ।

अप मरणादो विधवा भद्र दण्डविधा का लाया अभूषण लाया अभूषण
लाया अभूषण । मोरीनाथ—यह तो सच है ।

विधवा भद्र दण्डविधा का लाया अभूषण लाया अभूषण
लाया अभूषण । मोरीनाथ—यह तो सच है ।

विधवा भद्र दण्डविधा का लाया अभूषण लाया अभूषण
लाया अभूषण । मोरीनाथ—यह तो सच है ।

विधवा भद्र दण्डविधा का लाया अभूषण लाया अभूषण
लाया अभूषण । मोरीनाथ—यह तो सच है ।

मोरीनाथ—यह तो सच है ।

उसके बाद मोरीनाथ के साथ विधवा की अनेक प्रकार की बातें
हुई, विधवा मोरीनाथ विधवा की उमर दण्डविधा, धर्मिकता और विधवा
आनंद बहुत ही प्रसन्न हुआ ।

इसके बाद विधवा की आवाजों देकर मोरीनाथ ने प्रस्थान किया
ही कि अपने साथी दण्ड के साथ लाने आ पहुँचा । मोरीनाथ
उसके आनंद सेना का वह उमर, अर्पणमि में दुर्ग से नचे उतर गए । गायक-
वेर ली मंगिद विधवा की के साथ बहुत-सी बातें कर, सेना की व्यव-
स्था के सम्बन्ध में दण्ड कर, उनही आनंद से, अपने निवासस्थान को गये ।

वर विधवा की, अन्य सेनापतियों की यथायोग्य आदेश

महेश्वर पन्थोऽहम्, धर्मो न मम विद्मः । कथनां भयादहं
विदुरामास का सम्मतिः ?

गोपीनाथ—(विचार) गजन् ! धर्मो मन्त्रं जानामि, अप्राप्तं
स्वसम्मतिं जानामि दिक्षयिष्यामि । मन्त्री मे प्रतिज्ञा, मन्त्र-
सौदेह्यमिति । प्रमोदामिनमाम् । नारायणाय माहात्म्यं विदुः ।

शिवरात्रि—कृपानिधान ! नारायणः स्वयं प्रकटोभूय न
प्राप्य माहात्म्यं दिक्ष्याति, किन्तु भगवन्-महाशय-शरीर । त्वं
प्रतिज्ञायतो वृत्तिं सदायता ।

गोपीनाथ—गजन् ! कथनां दिनं कुर्याम्, परं यथा न
मामधर्मः । मृगेन, नर्थकं विद्यास्यामि ।

शिवरात्रि—ज्ञानं पापम् ? अज्ञानधर्मः ? केवलं श्रोत्रमिन्द्रिय-
प्रान्तस्थ-पट-कृतीरे यवन-भेनारतत्पत्रम्वान आनेयः, यथा
दिक्षयिष्यामि—दिक्षयिष्यामि । प्रमोदामिनमाम्—अप्यन्तं प्रसीदामि ।

आज तो मेरा अशेषभाग है और मेरे माता-रिता धन्य हैं । कहिये आप
के से विद्वानों का हम विषय में क्या सम्मति है ?

गोपीनाथ—(विचार कर) गजन् ! आप स्वयं धर्म का सत्त्व जानते
हैं, इसलिये मैं अपनी कोई भी राय नहीं देना चाहता । आरकां प्रतिज्ञा
और आपका उदर वहुत महान् है, इससे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है ।
भगवान् तुम्हारी सहायता कर ।

शिवरात्रि—कृपानिधान ! भगवान् प्रायः स्वयं प्रकट होकर नहीं,
वरन् आप के समान महाशयों के द्वारा ही सहायता करते हैं । अतः
आप कुछ सहायता करने की प्रतिज्ञा कीजिये ।

गोपीनाथ—गजन् ! कहिये, मैं क्या करूँ ? लेकिन धर्मसे मुझे
पाप न लगे वही कहूँगा ।

शिवरात्रि—शिव ! शिव !! शिव !!! इसमें अधर्म या पाप की
क्या बात है ! वयं, कल इसी उद्यान के किनारे लगे भेमे में यवनसेनापति

॥ नव कथंविन् प्रकाश-यदुत्ते मंगुने नमःस्थले, पामरं परिशी-
यमानागु आहूतिषु, कमलोन्मेष विह्वलनामासादृशगु र्वाग्यदने,
भ्रमराब्जिन्मेष पारितः प्रभृज्जनीषु अभि-वन्दिषु, चाटफैर-चरवदा-
यिनेषु कवच-चक्रकारेषु, गोशोभाय-वण्डितो यामेकं शिरसा-
दिशि परतश्च ययन-सेनापति-दिशि गतागत विधाय, सेनाप्रयाग
मध्य एव वस्मिन्निषु पट-कृदोरे अपजलस्थानमानेन प्रवचन् ।

शिवयोरोऽपि कीजेय-हंचुक्रम्यान्नलोद्-वर्म्म परिचाप, सुव-
र्णमृत्र-मधिमोष्णीयसायचम्पादायमं शिरस्त्राग मंभ्याय, सिद्धि-
नय-नामकं शस्त्रविशेष कथोरारोय, हृदयद्व-कटिरपजलमान-
साश्चात्काराय सज्जम्निष्ठानि स्म ।

विकचनाम्=विकसमायम् । उपमालङ्कारः । एवं परम् । चटकाप
अवस्थापि पुमानः चाटफैराः, तेषा चक्रचक्रायितेषु=चक्रचक्रनिवा-
चरितेषु, चक्रचक्र इत्यनुकरणगणः । कवचानाम्=उरश्चदानाम्,
“उरश्चदः वद्धकोऽनगरः कवचोऽस्त्रियाम्” इत्यमरः । चक्रकारेषु=
तादृशचक्रेषु । गतागतम्=यातायातम् । प्रवचन्=व्यवस्थापितवान् ।

उसके बाद आकाश में पर्याप्त प्रकाश फैल जाने पर, जब परम्पर
आकृतिर्वा पहचान में आने लगी, दोनों के मुण्डों के कमलों की तरह
प्रकुल्लित हो आने पर, भ्रमरावलिर्वा की तरह तलवारों के चारों ओर
दिखाई पड़ने लगने पर, कवचों की गोरियों के चहचहाने की-सी आवाज
करने लगने पर, गोशोभाय वण्डित ने एक बार शिवाजी की ओर, दूसरी
बार ययन सेनापति की ओर चक्रकर लगा कर, दोनों सेनाभं. के बीच में
हो, किसी खेल में अस्त्रजल खों को लाने का प्रवन्ध किया ।।

शिवाजी भी रेशमी कुर्त के अन्दर लोहे का कवच पहन कर, सेने
के सारों में गुंथी पगड़ी के नीचे लोहे का शिरस्त्राण रख कर, हाथों में
बलनगा पहन कर, हड्ता से कमर बग कर अस्त्रजल खों से मिलने के
लिए तैयार बैठे थे ।

मान-दन्दद्वयमान-परमहस्य-पटलण्ड-विहित-हेम-विहङ्गम-विभ्रमा-
ज्योतिरिङ्गणायित-परस्कोटि-स्फुलिङ्ग-रिङ्गित-पिङ्गीकृत-प्रान्ता-
दोधूयमान-धूम-घटा-पटल-परिपात्यमान-भसित-सितीकृतानोकहा-
सकलकलध्वनि पलायमानैः पतत्रि-पटलेरिव सोसूक्ष्ममाना-
शिविर-घस्मरा ज्वालमाला अवलोक्य, सहाहा-कारं तदभिमुख-
प्रयाताः । अपरे च महाराष्ट्रासि-भुजङ्गिनोभिर्दन्दयमानाः, केचन

कृतो दिगन्तरस्य = दिक्प्रान्तभागस्य, प्रकाशो याभिस्ताः । इङ्कडाभ-
निभिर्ध्वजैः प्रान्तप्रज्ञा याभिस्ताः । उद्गीयमानैः, दन्दद्वयमानैः = नितर-
पञ्चद्विः, परस्महस्यैः, पटलण्डैर्विहितो हेमानाम् = सीवर्णानाम्, विहङ्ग-
मानाम् = पतत्रिणाम्, विभ्रमो याभिस्ताः । ज्योतिरिङ्गणायितानाम् =
लघोतायितानाम्, परस्कोटीनाम् = भस्मपानाम्, पारस्करादित्याद्भु-
द्विदेन पराद्यवयवत्वात् न पित्तार्गः । स्फुलिङ्गानाम् = अग्निकणानाम्
रिङ्गितैः = उड्डयनैः, पिङ्गीकृता = पिङ्गरीकृताः, प्रान्ताः = परितरभूम-
याभिस्ताः । दोधूयमानानाम् = नितान्तं वृद्धिं गच्छन्तीनाम्, धूमघटा-
नाम् = धूमलेखानाम्, पटलेन = समूहेन, परिपात्यमानैः = समन्ततो वि-
पमानैः, भसितैः = भस्मभिः, सितीकृताः = शुभीकृताः, अनोकहाः =
वृथाः, याभिस्ताः । सकलकलध्वनि = कलकलशब्देन सह, पलायमानैः
पतत्रिपटलैः = पथिसमूहैः । सोसूक्ष्ममानाः = बोधुष्यमानाः । उड्ड-
भयात्कलकलं कुर्यान्ति विहगाः, इह च ॥ एव सूचनमुखोनीत्येति ।

मयभीम कर देने वाली, इजारी आगले कपड़ों के टुकड़ों से स्वर्णरश्मि-
का भ्रम उत्पन्न कर देने वाली, वृगुनू के समान करोड़ों चिनगारियों के
उड़ने से पास-पड़ोस को पीला बना देने वाली, लगातार बढ़ रही धूम
घटाओं से घाटी और चिमेरी का रही मग्न से वृथों को सफेद बना दे-
वाली, शिविर को भस्मसाग कर देने वाली अग्नि की उद्यालार्भ-
कलकल ध्वनि करके उड़ रहे पत्ती मानो चिनकी सूपना दे रहे थे—
देखकर हाहाकार करने हुए उसी ओर दौड़े । अन्य पवन मण्डलों के

तथा च तैरेवोक्तम्—

“ये नाम केचिद्भि नः प्रपयन्त्यवशां
 क्षान्तिं ते निमिषं तान् प्रति नैव
 उत्सव्यनेति मम कोऽपि समानधर्मा
 काचो ह्यरे निरवशिष्टिदुःखा च क

“विहीनो दम्भगतने परवचःश्लाघाम् वार्षपमा
 भूषणः कमलरिक्तसमदिरोन्मत्तन्मत्तर्
 भाभ्ये धाम्यति वन्न काश्यपधुना भन्तस्य कामादस
 स्वधामाधर माधुर्यं विभुस्यन् वार्षा दिव्यसोऽ

अहन्तु तान्भ्रातां सदाखीना परव-रजो-विमर्श-
 तदपेक्षयाऽधिकं भाव्ययत्तरोऽमीति निश्चिनोमि, यतो
 मार्मिकस्तु मिथिला-मही-मरेष्ट, भाग-साध्याय-ज
 समाज-सत्तीयन, मलामन्त्र, वरान्ध, धन्य-धन्य
 विन्दावली-विराजमान, राजमानोदर, नगोमर्दिता
 राजभीमेश्वरनिर्द्वारक एवास्ति । मातुर्नि ए परवत्
 श्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसाभ्यादानुहल-वामन
 नःकरणा विबुध-जनाः ।

ने] गुनीयो निधाम
 केत-लोडे: दुष्टिचने कथे मयचारि-बहु-वेव एव दयामबहु-

लक्ष-मार्गिका-दिगन्त-भमग-म ।
 गतो "हन् ! बधमपारिप हन्ती त्रिगुणेन नैवान गुत्वाकरोति ?
 एवं गङ्गानो सद्गुणेन न सद्गुहयति ? कथं पानी चक्रेन न नृपुण्यति ?
 एवं पानी पानीनं पातयति ? बध हन्ती हलेन नापहंतयति ? कथं
 वा जम्भारातिहन्मोलिपानेहन्मन एतानम्भाधि-उल-सम्भा-

मोर्ध । "नित्यव्यपदेशि" मार्गिकादे टिप्पण । आसन्ना समीपयतिनी,
 मार्गिका = हनुमानः । "महाशक्तिमार्गिकादिपुष्टनृपं प्युने" रित्यादिपु

मार्गिकाभिः प्रपुष्टोऽय हन्तः, उद्धृत इति महाशक्तिस्वरूप-कल्पमान-
 "मार्गादिहनि" प्रत्ययनिधनः "गर्ह" इति हिन्दी ।

हन्ती = शिवः, गुत्वाकरोति = गुलेन पचति । "गुत्वाकरो" इति
 शब् । मङ्गिनो = गुह्यं । चकी = विष्णुः । पानी = बध । "प्रवेष्टा बधः
 प.पौ" त्वमः । पानी = बधनशब्देन बधः, हली = बधः, अपहेल-
 यति = विरक्तयेति । जम्भस्य = तथाम्बोऽस्य, अराति = शिवः,
 हन्तः हन्मोलोनाम् = बधायम्, "हन्मोलिपानेहन्मो" त्वमः, पानी =

कहना की गुनी-बिहने तीस्य पुरी छिपी थी-हाथ में लेकर, काले,
 सुन्दर पने और पुंशुपले बालों वाला सौबला बालक, ब्रह्मचारी के
 रूप में हो गाँव की ओर चल दिया ।

"हा ! इतना अनर्थ और अपर्य होने पर भी भगवान् ब्रह्मचारी से
 इन अपमानों को क्यों नहीं रोष देते ? ब्रह्मचारीको दुर्गा अपने सह
 से इनके दुर्ग-दुर्ग क्यों नहीं कर देती ? चक्रपाटी विष्णु हर्षे चक्र से
 क्यों नहीं पीछ हाकते ? बध हर्षे पाप से जीव क्यों नहीं देते ? हथपर
 इन अभिमानीयों को घन मारकर समुद्र के पतझरों (एक निरुप
 समान के कारण समुद्र के बल का लहे होकर लम्बों का रूप ले लेना)

यादेव सुन्दरकन्या-विक्रय-असनिभिर्यवन-वराक्षरपट्टियसे ।
भगवदनुग्रहेण च कथं कथमपि मत्कर-मुक्ता पुनः प्राप्यसे । पर
यात्मन ! त्वमेव रक्षेनामनाथां दोना क्षत्रिय-कुमारीन्—इति
सकलं त्रिललाप ।

तदा इष्यं सर्वेऽपि चकिताः स्तब्धाः अधुमुत्साह संतृप्ताः
कुटीराभ्यक्षो ब्रह्मचारी च निजमपि किञ्चिद् बन्धु-वियोग-दुःखं
स्मारित इव पाप्म-व्रजोदम-दुर्देन-ग्लपित-मुक्तः कथं कथमपि
धैर्यमाधाय वदनं पटेन परिमृज्य पुनरवदधे ।

तावत्कुटीराहं यद्दि कस्मिंश्चित् कार्ये व्यासक्तो गौरवदुषिणो-
नेतेन कर्णयोराकृत्यमाण इव त्वरितमनः प्रविवेश । पौनःपुन्येन

बन्धुवियोगदुःखं स्मारितः—इष्टविरहस्लेशमनुभावितः, बाष्पाणाम्=
अभूणाम्, प्रजस्य = समृद्धय, उद्रेमेन = प्रादुर्भावेन, यद् दुर्विनम्,
तत्तुल्यम्, “मेघच्छन्नेऽहि दुर्दिनमि” त्यमरः, तेन ग्लपितम् = म्लानम्,
मुखम् = भाननम् यस्य सः । अविच्छिन्नाभुधायम्लानमुख इत्यर्थः ।
अवदधे = तावधानोऽभूत् ।

सुन्दर कन्याओं के व्यापारी यवन दुष्टों के द्वारा कई बार वेष्ट अपहरण
किया गया, पर भगवान् के अनुग्रह से किसी न किसी प्रकार उनसे छूटकर
मुझे प्राप्त होती रही । भगवन् ! तुम्हीं इस अनाथ और दोन क्षत्रिय
कुमारी की रक्षा करना ।”

यह सुनकर सभी लोग चकित और स्तब्ध रह गए तथा उन्हें आँसू
आ गए । कुटी के अध्यक्ष ब्रह्मचारी को भी मानो अपने किसी बन्धु
के वियोग के दुःख का स्मरण हो आया और उनका मुख निरन्तर बहने
वाले अभुधारा से म्लान हो गया । किसी प्रकार धैर्य धारण कर मुँह को
उत्तरीय वस्त्र से पोंछकर वह पुनः सावधान हुये ।

उस कुटी के बाहर किसी काम में लगा हुआ गौर ब्रह्मचारी इस
विलाप के श्रवण में पड़ते ही अन्दर आ गया ।

गवाभ-जालाट्टालिका-कपोतपालिका-चत्वर-गोश्र-भिनिष्ठा,

तस्मिन्नेव गजपुत्रेऽपि उदयपुरनाम्नो काचन राजधानी, यस्याः
 क्षत्रियकुलतिलका यवनराज-यज्ञवदता-हर्दम-मम्मर्देन कदाञ्च-

वेषयोनिविशेषा इव । विचित्रा = विविधा : गवाधाद्या येषु तद्वत् ।
 गवाक्षः=वातायनम्, "मिहक" "मरोला" इति हिन्दी । जालम्=
 बाधप्रवेशार्थमार्गः, "जाली" इति हिन्दी । अट्टालिका = प्रस्ताभिर्निर्भूत
 महासदनम् । अन्नणम् = भस्मम् । कपोतपालिका = काष्ठचित्तं पक्षि-
 वासरथानं विष्टम् । चत्वरम् = स्थण्डिल्यं चतुष्पदयोपकम् । अन्नत
 पृथगुच्चारणेन नात्र तदाचक्रेतेति वेदितव्यम् । गोश्रम्=गोशालम् । भिक्-
 =कुम्भं येषां ते । विश्वकर्मणा=देवशिल्पिना, रचिता इव = निर्मिता
 इव । सादिकरस्थानाम्=अस्त्रधारस्तस्त्रियवानाम्, कशानाम्=

ईपण्डुभ्रातः । 'ईपत्याण्डुस्तु धूसरः' इत्यमरः । यवनराजवशवदत्तैव हर्दम-

के समान हैं । जहाँ के, नाना प्रकार की लिङ्कियों, मरोली, रोहन-
 दानो, अदरियों, आँगनो, कबूतर पालने के दरवा, कबूतरों, गोशालाओं
 और दावारों वाले महल, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये से लगते हैं,
 और जहाँ की सड़के मुहम्मदों के हाथ को चातुक से अपमान के
 दिलने से चलने का सकेत पाकर हतगति से दौड़ने वाले घोड़ों के सुतों से
 खुद कर उड़ने वाली धूल से व्याप्त हैं । उसी राजपूताना देश में
 उदयपुर नाम की एक राजधानी है, वहाँ के क्षत्रियकुलतिलक राजाओं
 ने, मुसलमान राजाओं की अधीनता रूप कांधड से अपने को कभी भी

गवाक्ष-जालाट्टालिकाद्वग-कपोतपालिका-चत्वर-गोष्ठ-भित्ति,
विभक्तमंरचिता इव गुहाः, सादि-करस्य-कशाप-चालन-सङ्केत-मन्त्र-
नितिसांनि-समूह-शफ-सम्मर्द-समुद्भूत-धूलि-धूसरिताश्च मार्गाः । अने
तन्मिमेव राजपुत्रदेवे उदयपुरनाम्नो काचन राजधानी, यथा
भूत्रियकुन्दनिलका यवनराज-यशवदना-कर्म-सम्मर्देन कदाचन

देवयोगिनिशेषा इव । विचित्रा = विविधाः गवाक्षा ये गुहाः ।
गवाक्षः = वातावनम्, "निदक" "सोला" इति हिन्दी । जालः
वायुप्रवेशार्थमार्गः, "गली" इति हिन्दी । अट्टालिका = प्रसंगविधि
महागदतन् । अट्टणम् = भवितम् । कपोतपालिका = काकाविषय
वासस्थानं निदम् । चत्वरम् = स्थगया वायुप्रवेशोपक्रमम् । गोष्ठ
गुह्यगुहायेन नात्र उदाधकनेति वेदितव्यम् । गोष्ठम् = गोष्ठायाः । निद
-कृत्वं वेदा ने । विभक्तमंरचिता = देवशक्तिवत्, रचिता इव = निमित्त
इव । सादिकरस्यानाम् = मन्त्रारक्षकस्थितानाम्, कशापम् =
मन्त्रारक्षकानाम्, भवस्य = शालात्र, चालनसङ्केतेन = धारणसङ्के
सङ्केतानाम् = मन्त्रानां, मन्त्रिसमूहस्य = वाक्पतिवरस्य, शफसम्मर्देन
पु' इत्येते, समुद्भूतानि = उद्भूतानि, धूलिधूसरिताश्च मार्गाः
= ईष्यगुहाः । 'देवतागुम्भू भूमा' इत्यमरः । यवनराज-यशवदना-कर्म

के समान है । जहाँ के, जहाँ प्रचार का निदकिरी, सोलो, जल
राता, कादि, भित्ति, चत्वर गदने के दवा, चत्वर, गोष्ठ
जो दवा का चत्वर, विभक्तों द्वारा बनाये गये वे मार्ग हैं
जो वहाँ को सङ्केतपूर्वकता का लाभ का चत्वर के मन्त्र-
द्वारा से जल का चत्वर सङ्केतपूर्वक से होकर चले जाते हैं
जहाँ का चत्वर सङ्केतपूर्वक से चला है । इन राजपुत्रनाम
इसके चत्वर के चत्वर चला है, जहाँ के चत्वर सङ्केतपूर्वक
न, चत्वर चत्वर के चत्वर चत्वर के चत्वर चत्वर के चत्वर

द्वितीयो निधाम

न वन्द्यमानानु" इति कथयन्त्येव गौरविते: प्रसन्नानिगुह्यपि
 न निधाय—
 "यो न जानीते उदयपुरराज्यम् १ यदीव-पितृपू-दुर्गे परास-
 र्गा क्षत्रिय-कुलाग्रना, समता इव विमला, शारदा इव विशा-
 रदा, अनमूया इवानमया, यशोदा इव यशोदा, सत्या इव मत्या,

समस्तमर्थः = तत्त्वः । न वन्द्यमानानु = न तत्पूजने समुक्तः ।
 पितृपू-दुर्गे = "चित्तं इ गद" इति निगम प्रसिद्ध । केचित्
 पितृपू-दुर्गे = "चित्तं इ गद" इति निगम प्रसिद्ध । केचित्
 वयं न हि दूयिगता उदयपुरगीश इति गमयितुमिच्छन्ति श्रद्धा सन्निविष्टता-
 यामनु-दुर्गे । अथवा वन्द्यते तद्वत्त्वमहापात्रानु पितृपू-दुर्गे, उरी
 दयेति श्रद्धया "चित्तोश" इत्यमरापदविति चरितम् । कभला
 इव = भिप इव । "अमना भावित्विरे" इत्यमरः । शारदा = सरस्वती ।
 विशारदा = पण्डिताः । शारदा इव विमलतादेति विशेषभाषः ।
 अनमूया = भविष्यती । अनमूया = भूषणरहिता । अमूया = गुण्डु
 दोषविभक्षणम् । यशोदा = कृष्णमाता । यशोदा = यशोदाविन्या ।
 न केवलं पठितवानिस्त्रासामेव इतिरेपते अपि तु तत्त्वतीनामपि ।
 "ध्यानमाहं यथा भ्यासं विद्यामुदरते कदाचि"ति मानवश्च
 शासनमत्र भवति । सत्या = सत्यभाषाभिगना भीष्मपुत्रक,
 नानन्देष्टप्रदणन्यायात् । सत्या = सत्यभावविषयः । अर्थं भाषयन्तम् ।

कथित नही होने दिया । गौरव ने इतना ही कहा था कि ब्रह्मचारी
 गुप्त उष्ण निःधास लेकर, धीरे से बोले,
 "उदयपुरराज्य को कौन नहीं जानता ? जिसके चित्तोदुर्ग में हजारों
 क्षत्राजियाँ जो सत्य के समान विमल, सरस्वती के समान कुटिमती,
 अनमूया के समान भूषणरहित, यशोदा के समान पशु देने वाली, सत्य-
 भाषा के समान सत्य बोलने वाली, इतिमणी के समान स्वर्णभूषणों से

तस्मिन्नेव राजपुत्रदेशे उदयपुरनाम्नी काचन राजधानी, यत्रत्या
क्षत्रियकुलतिलका यवनराज-वशंवदता-कर्म-सम्मर्दनं कदाचन

देवयोनिविशेषा इव । विचित्राः = विविधाः गवाधाद्या येषु वारणाः ।
गवाक्षः=वातायनम्, “खिडकी” “सरोस्ता” इति हिन्दी । जालम्=
वायुप्रवेशार्थमार्गः, “जाली” इति हिन्दी । अट्टालिका = प्रस्तुतिनिमित्त
महासदनम् । अङ्गणम् = अग्रिमम् । कपोतपालिका = काठपरिचरं रक्षि-
वास्तथानं विरहम् । चत्वरम् = लक्षणया चतुर्भयबोधकम् । भङ्गन
पृथगुच्चारणेन नात्र तद्वाचकतेति वेदितव्यम् । गोष्ठम्=गोशालम् । भिच्छ-
=कुक्ष्य येषां ते । विश्वकर्मणा=देवशिल्पिना, रचिता इव = निर्दिष्ट

=ईषणुभ्राः । ‘ईषणुस्तु भूसरः’ इत्यमरः । यवनराजवशंवदतैव कर्म

के समान हैं । जहाँ के, नाना प्रकार की खिडकियों, सरोस्ती, रोशन-
दानों, भगारियों, आँगनों, चबूतर पालने के दरवा, चबूतरों, गोशालाओं
और दीवारों वाले महल, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये से लगते हैं,
और जहाँ की सड़के गुदसवारों के हाथ को चातुक से अप्रभाम के
रिश्ते से चढ़ने का संकेत पाकर द्रुतगति से दौड़ने वाले घोड़ों के लुपे से
गुद पर उड़ने वाली धूल से व्याप्त हैं । उसी राजपूताना देश के
उदयपुर नाम की एक राजधानी है, जहाँ के क्षत्रियकुलतिलक राजाओं
ने, मुसलमान राजाओं की अधीनता रूप कीचड़ से अपने को कभी नहीं

सोऽयं स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितुं लिखितः प्रकाण्ड-लेखः
यदि केषाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डानां कर्ण-कण्डू-संग्रहयेत्; न
कृतवृत्त्यः संयत्तैश्च । ये तु पुगेभागिनो निगीर्यापि प्रथमममुं तुण्ड-
मुण्ड-गण्ड-कण्डूयनेः, ताण्डव-करण्डीकृत-धूमङ्गेश्वाग्मानाम्मा-
कांश्च हासयिष्यन्ति; तेऽयसद्वय-प्रगति-रात्राण्येषाम्माकम् । चे-
तु जोषं जोषमालोक्यापि काव्यानि, समासाद्यापि च तोषम्, सरो-
मुज्जम्भिताभिजांठरज्याल्लाभिरेव तं जायन्ति; जायन्ति ते
माणोऽपि लौहमपि विषमपि दासीचास्थीन्यपि चेति विद्वद्भ्यः
कुक्षयस्ते न कस्य नमस्याः ?

अन्विक्रदतय्यामः

तृतीयो निधामः

न ज्ञानं ब्रह्मदामानुः" इति वचनस्येव गौरविदे; प्रत्ययान्तिगुणवि
 त्तं निधामः—

"को न जानीते उदयपुरभागम् ? यदीय-चित्रपूर-दुर्गे पराम-
 त्त्याः क्षत्रिय-बुद्धादनाः, यमना इव विमलाः, शास्त्रा इव विज्ञा-
 त्त्याः, अनमूया इयानमया, यज्ञोदा इव यज्ञोदा, सत्या इव सत्या,

तत्त्वमदः = तत्त्वमदः । न ब्रह्मदामानुः = न तत्त्वमदः ।

चित्रपूरदुर्गे = "चित्रं द गद" इति निवर्त प्रसिद्ध । केचित्
 "चित्रपूर" इत्यत्र चित्रं मन्त्रे "चित्रे" इत्यम् । भाग्यशालिनीय-
 यदा वा हि भूमिशा उदयपुरीय इति गमयित्तिविशेषात्तस्या तत्त्वमदता-
 यमनबुद्धानां । अममद्वये तत्त्वमदतायाः चित्रं गूढम्, उरो
 यमेति इत्यस्या "चित्रो" इत्यमशब्दस्येति चेदित्यम् । कमला
 इव = भिष इव । "अमम चोदयति" इत्यम् । शास्त्रा = सारस्वती ।
 विज्ञातृदाः = विज्ञातृदाः । शास्त्रा वच विज्ञातृदेति विरोधाभासः ।
 अनमूया = अविच्छेदी । अनमूयाः = अमूयादितः । अमूया = गुणेषु
 दोषविच्छेदम् । यज्ञोदा = इष्टमाता । यज्ञोदा = यज्ञोदादित्यः ।
 न केवलं वतिष्ठान्तिम्यासामेव वतिष्ठते अपि तु तत्त्वमदतामसि ।
 "म्यासमाही यथा म्यासं विनादुदते बलादि" इति मानवस्य
 शासनमत्र भवति । सत्या = सत्यभाविण्या । अर्थ आद्यवन्तम् ।
 नानिबदेनमरणायात् । सत्या = सत्यभाविण्या । अर्थ आद्यवन्तम् ।

बलवन्त नही होने दिया । गौरविदे ने इतना ही कहा था कि ब्रह्मचापी
 गुण उष्ण निधाम लेकर, पीरे से पीने,

"उदयपुरभाग को कौन नहीं जानता ? जिसके चित्रपूरदुर्ग में हजारों
 क्षत्रियों को लक्ष्मी के समान मिले, सारस्वती के समान बुद्धिमती,
 अनमूया के समान अमूल्यरहित, यज्ञोदा के समान यज्ञ देने वाली, सत्य-
 भावा के समान सत्य होने वाली, इतिमणी के समान इष्टान्मणी"

रुक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव च सुवर्णाः, सत्य इव मनः,
सम्भाव्यमान-यवन-बलात्कार-धिकारोर्जस्वल-तेजसाः, योगाग्निनेव
पतिविरहाग्निनेव स्वक्रोधाग्निनेव च सन्दीपितामु ज्वाला-जालाञ्चि-
तामु चितामु, रमारं रमारं स्वपत्नीन, पश्यन्नामेव स्वकीयानां
परकीयानां च क्षणान् पतङ्गतामङ्गीकृत्य, गङ्गाधरस्याङ्गभूपगताम-
गमन”-इति मन्दं व्याजहार ।

तदाकर्ण्य करुणया दुःस्वेन कोपेन आश्चर्येण वैमनस्वेन

रुक्मिणी = कृष्णरत्नी । रुक्मिण्यः = सुवर्णवत्यः । सुवर्णा इव = इनके
पदार्थों इव । सुवर्णाः = शोभनवर्णवत्यः । सुन्दर्य इति यावत् । सती =
सङ्कलनेन । सत्यः = पतिव्रताः । “सती साध्या पतिव्रता” इत्यमरः ।
यशोदादिदुर्व्यक्तिमात्रवाचकेषु बहुत्वं गौरवप्रदर्शनाय, तन्मुखेनोपमानोपमेय-
भाषनिर्वाहाय च । सम्भाव्यमानस्य = अनुमीयमानस्य, यवनबलात्का-
रस्य, धिकारे = तिरस्करणे, ऊर्जस्वलम् = बलवत्, तेजो वासा ताः ।
सन्दीपितामु = सुप्रज्वलितामु । कीरशामिहेतुकं प्रज्वलनमित्युद्देशेन—
योगाग्निनेव = योगसामर्थ्यात्समुत्पन्नेनाग्निनेव । परयुधिरहाश्रापमानेत
शक्तिनेव । स्वक्रोधादुद्भूतदहनेव । ज्वालाजालाञ्चितामु = कोलसन्त-
प्तमेतामु । “यद्गर्द्वयोऽप्यलङ्कृत्यवि” इत्यमरः । पतङ्गताम् = शानभटान् ।
गङ्गाधरस्याङ्गभूपगम् = भस्म, तद्भाषम्, भस्मभटान् ।

“पतिर्वीरमर्मासन्ता” त्यादिभिः पतिव्रीरप्राप्तेः कलस्य प्रदर्शितत्वेऽपि

शिरसामप्राप्तयाप्यथाऽपि उपलक्षणविधया पदत एवेति मन्वज्यम् ।

अर्धकृत, सोने के समान रमणीय, पार्वता के समान पतिव्रता थीं तथा
बिनहा तेश्च यवनों के सम्भावित बलात्कार को विचारने में समर्थ या,
मानो योगाग्नि, पतिविरहाग्नि या क्रोधाग्नि से प्रजोत की गई ज्वालाओं
यानी चिता में अपने ओर परावों के देखते ही देखते, अपने पतिवों का
‘भर रमण करना’ हुई, पतंग की तरह जलधर (शकर के शरीर
‘... बन गई अर्धवत् ’) भस्म हो गई ।”

वर सुन्दर करुणा, दुःख, क्रोध, आश्चर्य, वैमनस्य और ग्लानि से,

ग्यान्या च क्षालित-हृदयेषु निखिलेषु गौर्गसिह पुन स्व-वृत्तान्तं
वस्तुनूपचक्रमे यन्—

तद्वाच्यम्यवान्यनमो भूञ्चामो सद्गर्गसिहो नामात्मन्तान्-चरण
आसीन् ।

सद्गर्गसिहनाम्ना परिचित इव ब्रह्मचारी सत्रधिकमयाधित ।
स च पूर्ववदेव वस्तु प्रावृत्तन् ।

अम्मज्जननी तु धालावेवाऽऽवा स्ननन्धयामेश चागमत्सहोदरी
सौवर्गीपतित्यज्य, भुव विरहयाम्बभूव । अम्मत्तान्परगञ्च कैश्चलु-
रुर्कटुण्ठकप्रार्थयुं दुःखीका सुर्वन वृष्टनः केनापि विशालमन्त्रेनाऽऽहूतो

करुणया क्षालितहृदयेतिव्यदिभ्येण तूर्णयान्तरदृक्स्व क्षालनेऽन्वय,
क्षालनशोचारेण व्यापनार्थकम्, करुणायतिशयन्यङ्गनाय च तदाभव
णम्, दीपकालहृत्तः ।

समधिकम् = अत्यन्तम्, मयाधित = पञ्चामम्बभूव । प्रावृत्तन् =
प्रवृत्तः । स्ननन्धयाम् = वयःस्ननयाम् । गिष्टुमेत्यर्थः । विरहयाम्बभूव =
परिविष्याव । रुर्क = "रुर्क" इति दिव्यो । बौगमां गतिम् = उत्तमं
लोकम् ।

"हादिमीं पुर्यां लोके तूर्णमिहलमेदिनी ।

परिभाट् योगयुक्तश्च रणे चान्तिनुमो इतः ॥" इति स्मृतिः ।

ममी छोमी के हृदयों के पुत्र (व्यक्त हो) जाने पर, गौर्गसिह ने पुनः
अवना वृत्तान्त करना प्रारम्भ किया कि, 'उन्ही राज्य के अन्दरम वर्मेश्वर
सद्गर्गसिह हमारे पिता थे ।'

सद्गर्गसिह के नाम से परिचित से ब्रह्मचारी ने अत्यधिक पडा का
अनुभव किया । वह पहले की ही भाँति कहता गया—

हम दोनों अभी बालक ही थे, और हमारी बहन मीरन्त अभी दूध
पीतों बच्ची ही थी, कि हमारे माँ ने हमें छोड़कर, नृलोक को तिरहित प
दिया (मर गई), हमारे पिता भी ने, कुछ टुट्टेरेपुखी में मरने हुए, ९

वीरगनिगमन् । ततः पुरोहितेनैव चान्यामानावाशमपि यमस्य
 धानगी गौर-श्यामी एकदा मिश्रः महाऽऽवेदार्थं निम्नो तुगो
 चान्यन्तो मार्ग-धष्टी अकस्मान् काम्योजीय-दम्बु-चारेणऽऽवृत्तः
 तेनैवापन्न-महार्ह-भूषणी गृहीताश्चो बद्धी च सहैव घनाद्वन-
 नायिष्वहि । / “यद्यपि शत्रुसन्ताना निर्दयं हन्तव्यं एव; तथापि
 नामा-भूषण-भौक्तिके इव योगा-नुष्ठात्रिषु श्यामकर्ण-द्वयाविषु च
 मनोहर-रूपो समानाकारी समानधर्मो समान-परिणामी समान-
 स्वभावी समान-व्यसो समान-गुणो केवलं वर्गमात्रतो भिन्नो रान-
 कृष्णाधिबामू गौर-श्यामी बालः॥ तद्वदयं बहुमूल्याधिनिकृष्टाणि

यमलौ = सहो । “शुद्धा” इति हिन्दी । मार्ग-धष्टी = विन्दु-
 मार्गो । काम्योजीयदम्बुचारेण = कम्बोजदेशोत्तस्करदम्बुरेण । अपन्न-
 महार्हभूषणी = तुण्डितबहुमूल्यालङ्करी । बहुनीहिः । अनायिष्वहि =
 नीतो । / शत्रुसन्ताना. = रिपुवंशाः । “वंशोऽन्ववायः सन्तान” इत्यमरः ।
 समानपरिणामी = समविद्यालतो । वर्गमात्रतो भिन्नो, ज्येष्ठस्य गुण-
 त्वात् कनिष्ठस्य च श्यामत्वात् ॥

हे, किमी के द्वारा भीषण माले का आपात कर देने के कारण, वीरगति
 प्राप्त की । तदनन्तर पुरोहित के ही द्वारा पाले जाते हुए हम दोनों शुद्ध
 भाई गौर और श्याम, एक दिन मिश्री के साथ चिह्नार खेलने निकले और
 घोड़े पर चलते-चलते रास्ता भूल गए । अकस्मात् कम्बोज देश के लुटेरों
 ने घेर लिया, हमारे बहुमूल्य आभूषण और घोड़े छीन लिये, और हमें
 बाँध कर अपने साथ वे एक जंगल से दूसरे जंगल ले गए । वे आपस में
 बातचीत करते थे कि, ‘यद्यपि शत्रुओं की सन्तान की निर्दयतापूर्वक हत्या
 कर देना चाहिये, तथापि वे दोनों बालक नय के दो मोतियों की भाँति
 वीणा को दो तुम्बियों की भाँति और दो श्यामकर्ण घोड़ों की भाँति सुन्दर
 रूप वाले हैं । समान आकार, वय, विद्यालता, स्वभाव, स्वर और गुणकाले
 केवल वर्ण मात्र से भिन्न वे दोनों गौर और श्याम बालक बलराम और

कस्यचिदपि महाधनस्य हस्ते विक्रयणीयौ” इति तेषां घोरतरान्
मन्त्रापान् शृण्वन्तौ “कथं पत्न्याघटे ? कथं वा मुन्याघटे ?”
इत्यनन्तरं चिन्तयन्तौ कथं कथञ्चिन् कञ्चित् ममयमयापयाव ।

अथैवम् । अत्रिन्त्यन्य-सार्थमप्युक्तं तत्तद्वृण्ठविषया सर्व-
स्वपि तस्य पन्थाभेदानुमृतेषु आवाभ्यामपि पलायनावसरो लक्ष्यः ।
यावदात्मने तत्तद्वृण्ठविषया तत्तद्वृण्ठविषया तत्तद्वृण्ठविषया

[illegible]

पान्थसाधंम् = पथिकजनत्रम् । सल्लुटुण्ठायिवया - तस्य पान्थ
 सार्थस्य धनापविहीर्षया, पथिकरे = गात्रबन्धे । “मवेत्तरिकरे माते पर्यङ्क-
 परिहारयोः । द्रगादगाधिकारकथे निवेकारम्भयोरपी” इति विश्वः । अस्ति-
 पेनुकाम् = घुरिकाम्, “घुरिका पालिपेनुके” इत्यमरः । बाहुमूले = कथे,
 निस्त्रिशम् = तप्तम् । आत्मोत्तोलनयोग्याम् = स्वोत्पापनाशम् । सञ्ज्ञाम्
 = गोविदापूर्णम् । तिष्ठामिति वाक्यम् । उपकारिकाया = पदमयनाम् ।
 “उपकार्योपकारिके” इत्यमरः । “तम्” इति रिन्दा ।

कृष्ण के समान है। ये भक्षण हा बहुरूपी हैं, अतः किसी बड़े सेठ के हाथ उन्हें बेच देना चाहिए, उनको इस भीषण बाढ़पीन को सुनने हुए, सीधा 'किम प्रकार भगी ? किस प्रकार ऐसे ?' इसी की निज्जर चिन्ता करते हुए, हमने जैसे-तैसे कुछ समय बिताया।

एक दिन किसी पथिक समुद्र को आठा देख, उसे ताने का हथौड़ी से सभी के उसी ओर चले जाने पर हम लोगों को आगने का झोंका दिख गया। बगड़े परन कर, बगड़ में घुसा बाँधकर, दाग में दाग लगाकर हड़का कर, उनकी को बन्दूकों में से आगने योग्य एक-एक छोटा (मदी) बन्दूक हाथ में लेकर, हम दोनों जनों ही मोने के बगड़ आये कि हमने देखा कि बगड़ पहरेदार जिसके हाथ में लष्कार है, हमें बगड़ निकालने से रोक रहा है।

भयाऽऽनन्ता भुवि विहा मन्थायो नम—“मयमर्त्तवर्त्त! विन-
 यतिर्य वक्ष्यमि नन्थानायादमेकमपि न प्रयत्नमपि चेत् । प्र-
 येनपतिनायात्तन पुत्री-पात्तव्यं विहायावः” इत्यादिमन्त्र भवेन इति
 भूत नान्यन मूढ-वक्ष्ये, मायि न नथैव वदन्त्येति विवेकः; मादित्त-
 नान्मायेन इयाममिहमन्त्राणां पत्नी-वक्ष्यायाः; प्रान्ते वदन्तां पत्नी-
 वक्ष्यामभ्याना कौमिहमन्त्रवेगौ इयाम्कणांवाप्रान्तिगौ इत्युच्यते,
 वक्ष्यामायोऽय मयंन. मजीकृत्य पितृमात्रं वक्ष्येति मुमुक्षुश्च
 तथैव मजीकृतवान् । ननद्यादमयां इयमात्रं तस्य प्रीति-
 मात्रकोट्य ननयन वक्ष्येमात्रं नर्त्तनेर्त्तनो-साहं मृत्प्रार्थं च विचार-
 इयाममिहमिहानयान् ।

परेनपतिना = यमेन, पालिनायाः = रक्षितायाः, पुत्राः पान्त्र ।
 मूढधामी गुरुः, तस्मिन् । मयेन काठभूते “हर से काठ हुर”
 इति भाषायाम् । किञ्चिदकुवाणः कोलाहलमपि नाकायादिति मूढवन् ।
 फेनवर्षिणाम्, भोजनकालोपरिश्वात् सुप्तोपरिष्ठाः फेनं वनन्त्यश्च इति
 स्वभावात्, आज्ञानेयौ = कुलीनौ । “यन्निनिर्मिच्छद्वयाः स्तब्धन्ध पदे
 पदे । आब्रानन्ति यतः संस्थाभाबानेयास्ततः स्मृताः ॥” इत्यश्वशाम् ।
 तज्जने = मर्त्तनैः । इङ्गितवान् = चेष्टया बोधितवान्, गन्तुमिति हेतुः ।

हम दोनों ने बन्दूक तान कर कहा, ‘धम, बस, नीच ! यदि कुछ भी
 अधिक बोला, या उस जगह से एक कदम भी चला तो यन्त्रुरो का
 अतिथि बना देंगे ।’ यह सुनकर वह पहरेदार हर से काठ हो गया, मैं
 वैसे ही निशाना साधे खड़ा रहा, मेरे इशारे के अनुसार इनामसिंह ने उसी
 विन के पास बैठे, फेन उगल रहे घोड़ों में से दो घोषगामी, अच्छी बालि
 के दशमकर्ण घोड़ों को खोलकर, लगाय लगा कर, उन्हें सब तरफ से मुनत्रित
 कर, एक पर चढ़कर, उस पहरेदार पर उसी तरह बन्दूक तान ली ।
 के बाद मैंने भी दूसरे घोड़े पर बैठकर उसही गर्दन धपधप कर,
 उसे नचाते हुए, धमकियों से पहरेदार को निहत्ताहित और अधमरा ल
 कर के, दशमसिंह को चढ़ने का इशारा किया ।

अथाऽऽवांद्वावपि यायुवेगाभ्यामदधाभ्यामहातेर्नवापथा, उपत्य-
कान उपत्यकाम्, यमाद् यनम्, प्रान्तराच्च प्रान्तरमुल्लङ्घ्यमानो तेनैव
दिनेन गच्छ्यामि-यश्चकं प्रयातो । सायं समये च कामपि घामटिका-
मासाद्य अन्यनमस्य गृहस्य द्वारं गतौ । कुरुच हनुमन्मन्दिरमघगत्य
तस्मिन् प्रविष्टौ तदप्यक्षेप्य केनचिन् साधुना च सम्वागतमाग्रहेण
धासितौ, तत्रैव निवासमकृष्वहि ।

अथ तत्पदनमेष हनुमत्प्रमादीभूतं मोदवादि समान्धाद्य, तस्यैव
मृग्येनाऽऽनीतं यवस-भारं वाजिनोरमे पानयित्वा, मन्दिरस्यैव
वर्षिर्वेदिनायामितल्लतः पर्यटन्तो मुहुर्तमावाप्तवास्थिष्वहि ।
तत्रैव दुग्धधाराभिरिव प्रथमं प्राची संश्लास्य, भस्मिददगुरि-

अपथा=कुमार्येण, प्रान्तरम्=दूरस्थो मार्गः । "प्रान्तर दूर-
स्थोऽन्ते" त्वमरः । "प्रातर" इति द्विती । धामिनी=स्थापितौ ।
यवसभारम्=वासभारम् । अवाग्निष्वहि=स्थितौ, "समवय-
विन्यः १५" इत्यात्मनेपदम् ।

तत्रैव समुदिने क्षेत्रचन्द्रमण्डले परितो दृग्गतमकार्यमिति सम्बन्धः ।

हम दोनों हवा के समान तेब उन चोड़ी से, अनजाने रास्ते से ही,
उपत्यका से उपत्यका, एक जगह से दूसरे जंगल और एक उजाड़ मार्ग
से दूसरे उजाड़ मार्ग होते हुए, उसी दिन इस जंगल निबल गए । घाम
को एक छोटे-से गाँव में पहुँचकर वहाँ के एक अच्छे घर के दरवाजे
पर गये । उसे हनुमान का मन्दिर जानकर, उसमें घुस गए । उसके
अप्यथ साधु ने स्वागतार्थक साम्रह होने वहाँ रखा और हम वहाँ रह गए ।
मन्दिरअप्यथ के हाथ दिये गये हनुमानजी के प्रसाद के लड्डू आदि
खाकर, और उन्हीं के नीचे हाथ लाई गई पास को चोड़ी के आगे
बाल कर, मन्दिर के बाहर के चबूतरे पर इधर उधर घूमने हुए, हम
हुँच धण दके ।

तदनन्तर, पहले प्राची दिशा को मानो दुग्धधाराओं से घेरकर,

द्वितीयो निष्पासः

मर-कत्तन-शाणोल्लीट-निर्मिते इव च समुदिते चैत्र-
 तन्त्रफाटनेन मुष्टं प्रतीयमानाम् सर्वांस्तु दिक्षु, अहं परितो
 कार्यम् । अद्वाष्टय यदुत्तगाभिमुखम्, तद् विशालं मन्दिर-
 द्वारस्योभयतः सुधालित्र-भित्तिकाया विशाले मन्दिराक्षरे-
 तुमान् 'रामदूतो विजयनेतराम्' 'विजयनामक्षयकारी'-
 नि वाक्यानि गद्गदि-चिह्नानि च लिखितानि सन्ति । तत्र
 मिकः खल्वः शैलरण्ड, पूयंया गहनं वनम्, पार्श्वमाया च
 नैर् पञ्चलमासीत् । यद्यप्यसौ पयन-वण्डो नात्यन्तं भयानक
 तथाऽपि विविधगण्डशैलावृतः, मर-समर-ध्वनि-पूर्ण-

ट = दिग्वाङ्माला । समीर्णमरकत्तनाय = राग्यकायनाशाय ।
 नन = वण्ड, लल्लीट = उचिते, निर्मिते = लम्बे । यपरितोऽप्युत्तगा-
 तमठावर्जनमेव कविलमयस्याप्यनुगुणम्, तथापि शाणोल्लीटस्य
 नक्तुविशेषोपापयत्वेनैव इत्यभिहितमिति वेदितव्यम् । प्रवीणा-
 नानामु = इदमनानामु । सुधया = वृत्तेन, "पूना" इति हिन्दी,
 ताया भित्तिकाया । अतिशयेन विषयते विजयनेतराम्,
 "विजयने" तदपि "विजयनेत्यर्थे" त्वाम् । पञ्चलम् = भयानक

भङ्गुर के समान और लोती की भाली के लिए बरु के समान पैत्रमास
 के बालचन्द्र के उदित हो जाने तथा उसके प्रकाश से सनी दिग्भाती
 के लए दृष्टिगोचर होने पर होने वाली ओर दृष्टिपान किया
 और देता कि उत्तराभिमुख को दिशा मन्दिर है, उसके मुख्य द्वार के
 दोनों ओर, पूने से पूरी हुई दीवारों पर, बड़े-बड़े अक्षरी में, तिनूर से
 'शयति तुमान्' 'रामदूतो विजयनेतराम्' 'विजयनामक्षयकारी' इत्यादि
 अनेक वाक्य और मटा आदि चिह्न अंकित हैं । उस मन्दिर के उत्तर एक
 छोटी-सी पहाड़ी, पूर्ण है, बना उमल और पश्चिम की ओर एक ठंठ का
 ताण्ड या । वह पहाड़ी बर्तन बहुत भयानक ही नहीं है, निरभ
 पहाड़ी से चिटी, लोती की लाल पत्थि से दिग्भाती को उदित करने

दिगन्तरालः, महीम्ह-समूह-समावृतः, द्वावच-सानु-प्रचय-सूचित-
विविधकन्दरश्चाऽऽसीत् । चन्द्र-चन्द्रिका-चाकचक्यान् रुद्रमया
लोक्यन्तेनस्योपत्यकाः ।

ततश्च शिखी-झङ्कारेणैव केनचिन् विलम्बेन अनादृत्यनिनेव
पथ्यं पूर्यत यमुधा, विचित्र एष कञ्चन परस्मिन्-सानु-प्रचय-
सोदरो यत-रात्रि-ध्वनिः, तमेव स्वरं गम्भीरं विशकटव्य आकल्पयता
समभ्रावि कीचकध्वनिरपि, तत्राव्यवधता साक्षादकारि मयुकर-

मरः । झरम्य = वायिवाहस्य, “वायिकाहो निरुपे सर” इत्यमरः,
सर्पलपनिना पूरितानि दिगन्तराणि यस्य सः महीरुहाणाम् = इषाणाम्,
समूहेन समावृतः = आच्छन्नः, अतिरनीभूतश्च इति भावः । द्वाव-
चानाम् = निम्नोन्नतानाम्, सानूनाम् = अतिनिम्नानाम्, प्रचयेन =
मनूरेण, सूचिताः = प्रकटिताः, विविधाः = अनेकाः, कन्दर यस्य सः ।
चन्द्रचन्द्रिकाचाकचक्यान् = व्योम्नादस्रतः ।

शिखी = झड़्गारा, तस्या झङ्कारेण । रावावदस्या स्वनति शिखी प्रा-
दधाते । विलम्बेन = मिश्रतयेन । अनादृत्यनिनेव, इवेन तुल्यत्वेन । वायविकोऽनादृत्यनिनु योगिमस्य एव । परस्मिन्-
गाम्, तानपुगमा यः पद्वन्मरः, तन्मोदरः = तन्मूत्यः । विशकटव्य =
विविध । कीचकध्वनिः = वेगुगितेयध्वनिः । “वेगवः कीचकारी सुरै-
स्वननदनिरोऽन” इत्यमरः । समभ्रावि = भुक्तः । अव्यवधता = सान्नि-
दश

बन्धी और शिखी के मही से मय का तथा उसको ऊँची-नीची शिखी
उसने अनेक कन्दराओं के होने का सूचना देती थी । चन्द्रिका की चमक
से इसका मन्दरी के ऊँचे-नीचे भाग मन्द दिशाओं पर रहे थे ।

उसके बाद शिखी का झङ्कार के मयान दिनों अनादृत्यनिनेव को-
नी दिग्गम्य ध्वनि से पूरा पूर्ण हो उठा । द्वावो मानूरी के वा-
व्य के सनन, वनरों को वर ध्वनि विविध थी । उसी पर की
मन्त्रमन्त्रों के विविध कहे होने पर कीचक की ध्वनि भी मय की दी ।

ॐ श्रीः ॐ

शिवराजविजयः

गद्यकाव्यम्



“विष्णोर्माया मगधती यया सम्मोहितजगन्”
“हित्यः स्वपादेन विहितितः रत्नः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते” ।
—सायणम् ।

वागीश्वर्यै नमः ।

शिवाडे खेलन्ती शिवशिरसि गङ्गासहरिका
ममुपद्रम्भीरन्वनिभरसमुदीपितमदाम् ।
निरीक्ष्योत्कृष्टा यामा सरलहृदयाऽऽवृण्वितयती
यमासेव्यं देवं तमिह कल्पये वित्तनिलये ॥

शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

स्पर्शनेय मनोमुखाह जनिता रोमाञ्चरूपाङ्कुराम्
यत्नेर्जातमनोज्ञधारनुदिनं पञ्चादिभिर्दिताम् ।
तां पाणिमहणाद्रिरेव समये निर्या, यमात्पुलिताम्
स्निग्धा स्नेहसतां स्मरामि गिरिजाकेदारयोः प्रीतये ॥ १ ॥
गहनदशनशासमहानसोदधिनिमज्जनक्रेनुरुत्तरिणी ।
सरससंरुतकाव्यमुधाम्बुधिं समरपाहतु मेऽय सरस्वती ॥ २ ॥
शिवराजवयं नाम गद्यकाव्यमनूयने ।
केदारनाथमिच्छेण छत्रेभ्यो राष्ट्रमापया ॥ ३ ॥

वन्य-पतङ्गिणां स्थगित-मन्थराऽऽरावाः समाकर्ण्यत । अथानुभवन्
धीर-समीर-स्पर्श-सुखम्, साम्रेडमवलोकयन् तारकितं नमः, स्मारं
स्मारं स्वगृहस्य, महाचिन्ता-पारावारे इवाहं न्यमाङ्क्षम् । ततः पृष्ठो
भित्तिकामाधित्य, करी कटि-प्रदेशे संस्थाप्य, साम्मुखीन-शिखरि-
शिखरे चक्षुषी स्थिरयित्वा, आत्मानमपि विस्मृत्य व्यचार्य वन—

अहह ! दुरदृष्टोऽस्मि !! धन्याधावयोः पितरौ; यौ सुखिना-
वेवाऽऽवां परित्यज्य दिवं सनाथितयन्तौ, न तयोरदृष्टे पुत्र-विदलेष-
दुःखं व्यलेखि धात्रा । नितान्तं पापिनी चाऽऽयाम् ; यौ बाल्य एवे-
दृशीषु दुरवस्थासु पतितौ । का दशा भवेत् साम्प्रतमाययोरनुजावाः

पूजितम् = सकृतम् । स्थगितमन्थराः = मान्धर्वान्याः । तारकाः शंका-
भेत्यर्थः । आरावाः = शब्दाः । समाकर्ण्यत = श्रुताः । कर्मणि क्ते ।
तारकाः संजाता अस्मिन्निति तारकितम् = उद्भूतगणसमेतम् । “तदस्य
संजातं तारकादिभ्य इतच्” । स्वगृहस्य, “अधोगर्हदेशां कर्मणा” ॥ ४४ ॥
महतीनां चिन्तानां पारावारे = समुद्रे । न्यमाङ्क्षम् = निमग्नोऽभवम् ।
करयोः कटिप्रदेशे संस्थापनं चिन्ताधरा । साम्मुखीनशिखरिशिखरे =
पुरोवर्तिपर्वतशृङ्गे । आत्मानमपि विस्मृत्य, विचारेकतानताभ्वननायेदम् ।
लोकोक्तिरेषा ।

होने वाले स्वर सुनाई दिये । तत्पश्चात् धीरे-धीरे वह रही इषा के स्पर्श
के सुख का अनुभव करता हुआ, तारों भरे आकाश को बार-बार देखता
हुआ और अपने घर की याद करता हुआ मैं चिन्तासागर में डूब गया ।
किर दीवार से पाँठ टिका कर हाथों को कमर पर रखकर, सामने वाले
पर्वत की चोटी पर अखिं टिकाकर, अपने को भाँ भूल कर, मैं सोचने
लगा, — “हाय, मैं क्या ही अभाग्य हूँ । हमारे माँ-बाप धन्य थे, जिन्होंने
हम दोनों को सुखी छोड़कर स्वर्गलोक को अलङ्कृत किया । उनके भाग्य
में विधाता ने पुत्र वियोग का दुःख नहीं लिखा था । हम दोनों महापापी
हैं जो बचपन में ही ऐसी दुर्दशा में पड़े हैं । इस समय हमारा बहिन

सर्वान् । इत् ॥ इत् भाम्या स पाठिका; वा अस्मिन्नेव वर्जित
 तिन्नां परित्यक्ता, माययोरप्यदर्शनेन कन्दने कण्ठं कदधंयति ।
 इत् ! सततमस्मत्कोटं क-कोटनिकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्र-चक्र-
 रत्न, सततमस्मत्कण्ठ-रत्नमालाम्, सततमस्मत्सह-भोजिनीम्,
 इत्यनुजिह्वैः, मधुर-मधुरैः, सुधा-स्पन्दनैः, दाद-दादित-भाषणैः
 नाभोर्द्वयं हस्तीम्, क्षणमात्रमस्मदनवलोकनेनापि वाष्प-
 नाहं करोती मञ्जिनयन्त्रोम्, कथमेना वृद्धः पुरोहितः सान्त्व-
 यन्ति ? अस्मज्जनकापिशेयः पुरोहित एव वा क्वं नी विना
 विप्यति ? परमेश्वर ! तथा विवेचि यथा जीवन्तं वृद्धं पुरोहितं
 विनी साक्षात्तुः—

कन्दनैः = रोदनैः । “कन्दने रोदनाकाने” इत्यमरः । कदधंयति =
 [पति, भस्मकोटमेवैकं कीदृशकम् = सेतुस्रपन्नम्, “विलोना” इति
 रित्, पत्तास्ताम् । भस्मन्मुखचन्द्रस्य चकोरीम्, चकोरी यथा चन्द्रमसं
 निरुपति तथैव सास्पन्मुखम् । सुधास्पन्दनैः = अमृतपञ्चरसैः,
 दाद-दादित = “दात दात” इति संस्कृतम्, वदप्रभं । प्राकृते दाद-
 दादिति । अस्माकम्, जनकापिशेयः = निपुण, नौ = भाषाम् । “पदी-
 कोण की तथा दातत होतो । दात, वर लक्ष्मी वही भामागी है । इसी
 “मे ठठे मौ-स्य ने छोड़ दिया और इस दोनो को भी न पाकर, ये-
 ॥ वर वर गला चढ़ रही होतो । दात, इसी मोद ही जिसका खिंचना
 पी, जो चकोरी की भाँति उस ह्मारे डूँव की ओर ही देखा करती थी,
 को हमारे गले की रजमाका है, जो ठठे ह्मारे दात ही देखा करती थी,
 की सुधावर्षिणी कोतली और मधुर कोली में ‘दाद ! दाद ! । दात ! दात !’
 वर वर इसाध यन इत्ये पातो, क्षण भर भी इसे न देख पाते वर
 अंगुली से गाल को छीका कर हेने वाला उस कोरवर्ष को इद पुरोहित
 सन्वना देते होते । अथवा हमारे गिला के कदाम पुरोहित ही हम को
 ने भक्षण में देते जो लक्ष्मी ! परमेश्वर ! देखा करो कि इस वंदिता

इति विन्ता-चक्रमास्तु एव आत्मनं विस्मृत्य भित्तिका
एव शनैरस्त्वलम् । प्रातःसंज्ञश्च समपश्य यन् इयामसिद्धौ मा
पूजकाश्च मानु थापयन्ति—इति ।

अथाऽऽवां तेन साधुना मन्दिरस्यान्तर्नीवी महावीर्ये
समीपे चोपवेशितौ ।

तवाऽयलोक्य तां वक्ष्येपेय निमित्ताम्, साकारामिव धीरता
गदामुद्यम्य दुष्ट-इल-इलनार्थमुच्छलन्तीमिव केशरि-किशो
मूर्तिन्, न जानि कथं वा कुतो वा किमिति वा प्रातरन्धकार
वसन्ते हिम इव बोधोदयेऽबोध इव ब्रह्मसाक्षात्कारे भ्रम इव
सदित्यपससार आवयोः शोकः । प्राकाशि च हृदये यद्—

चतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावी” इत्यनेन नायादेशः, “पुथग्विनानानामित्नु
यान्यतरस्यामि” ति समुच्चयाद् द्वितीया । सौवर्णीम्, चं विनाप्रि उच्यते,
“गौरवाः, पुरुषो हन्ता यकुनिर्ममो ब्राह्मण इति” ति भाष्यानुसारेण ।

भित्तिकासंसक्त एष=कुञ्जसंलग्न एव । शनैः=न
अस्त्वलम्=अवतम् । प्रातःसंज्ञः=प्रातःचेतनः ।

वक्ष्येण=इन्द्राबुधेन । साकाराम्=शरीरपारिणीम् । केशरि-किशो

इस प्रकार विन्तामल होकर मैं अपने को भी भूल गया और दीवार
से टिका हुआ लुटक गया । होश में आने पर मैंने देखा कि वामर्ध
और मन्दिर के पुजारी मुझे उठा रहे हैं ।

उसके बाद वह साधु हम दोनों को मन्दिर के अन्दर ले गया और
हमें महावार की मूर्ति के पास ही बिठा दिया ।

तदनन्तर, वज्र से बनी हुई-सी, साक्षर-धीरता-सी, गदा उठा कर
मुझों के संहार के लिए उछल-सी रही उस हनुमान की मूर्ति को देखकर
न जाने कैसे, प्रातःकाल के समय अन्धकार की तरह, वसन्त ऋतु में हिम
की तरह, शान हो जाने पर अज्ञान की तरह और ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने
पर भ्रम की तरह, इत्यादि शोक दूर हो गया, और हमारे हृदय में एक
प्रकार के भाव उठे कि—

द्वितीयो निष्पासः

]

“अहं यदुना चिन्ताभिः ! कश्चन पुरुषार्थः स्वीक्यताम्, न
 बुद्धयतां यदावामेव दुरदृष्टवशात् त्यक्त-कुटुम्बी चने पत्य-
 व-इति, किन्तु कोशलेभरतनयी राम-लक्ष्मणावपि चतुर्दश-
 शीर्षि यावद् दण्डकारण्ये भ्रान्तवन्तौ ।”
 ततः साधोभरणयोः प्रणम्य मयोक्तम्-भगवन् ! नास्त्यविदितं
 किमपि भवादृशानां सदाचार-दृढप्रतिनाम् । तद्व्यवसाय किमावां
 करवाव ? कुतो गच्छाव ? कथमापयोः भेषः-सम्पत्तिः स्याद् ?
 इति ।

ततो ह्युमत्पूजकेन सर्वमरमदृष्टान्तं पृष्ट्वा ज्ञात्वा च काष्ठ-
 दृष्टिवादां पृथोन्मथित-सिन्दूरेण किमपि यन्त्रमिबोन्मिदय, चन्दनैः

रत्न = केदारिभयस्य, मूर्तिम्, हनुमत्प्रतिमाम् । सतित्यपससार शोकः,
 रत्नैः मूर्तिपूजापरम् । हनुमत्पूजेन रामलक्ष्मणस्मरणे तपोभ स्मरणेन
 नवासाधनानाम् । प्राकाशित-सुखम् ।

भेष-सम्पत्तिः = कल्याणवासिः । काष्ठपट्टिकायाम् = दाह चक्रे ।
 शक की पत्थी” इति हिन्दी ।

पूजेन-सर्विग, उन्मथितम्-मैत्रित्वम्, सिन्दूरं तेन । “महाबली”

‘अब अधिक चिन्ता न करके कोई पुरुषार्थ स्वीकार करो । पर मत
 खोचो कि हम ही दुर्भाग्य वश पर-पर छोड़ कर बंगलों में भरक रहे हैं,
 प्यार के पुत्र रामलक्ष्मण भी जोर-जबर्तन से दण्डक वन में भटकते
 गिरे हैं ।’

उसके बाद उस साधु के परजों में प्रणाम कर मैने कहा ‘भगवन् !
 दण्डकारण्य वन का पक्ष्य से पालन करने वाले आर्य के-से महापुरुषों से
 इस भी डर नहीं है, अतः बताइये कि हम दोनों अब क्या करें । क्या
 करें । हमारा कल्याण कैसे होगा ।’

उसके बाद उस पुत्राये ने हमारा साथ पूजा-उद्देश्य का तथा जान
 १२, १३ की पत्थी पर पुरुषविभक्त सिन्दूर (महाबली) से दाह चक्रे-

मन्त्रं, तृणमगच्छेयं, पुनः पूजयित्वा, द्विषति क्षणं आन्दोलन
मम हस्ते तृणोच्छिद्यं परवा, “कम् ! अस्मिन् यन्त्रे तस्मिन्त्रये
कोत्रे यथावति अनुष्ठानमिदं ग्राह्यम्” इत्यस्ति । तत्र ग्राह्यं
कोत्रे निर्दिष्ट-अमुकं मांसं मुहूर्तान् अङ्गुष्ठपर्यन्तं द्विषति तर्जनीयं
स मामराणीन्—

यस्य 'कदाचित् मा स्म गमो गृहं व्रति, यतो मार्गे पर्यवर्तते
अरण्यानां पुत्रं यदकं काम्योत्राया यवन-दम्पसं भयतोऽप्यहमपि
विचरन्ति । दम्पुनि क्रियामसिद्धिदारेण यद्विषयमानं दंष्ट्रक
लोम्य भयदूषामवाप्तिनः सर्वेऽपि त्वं त्वमाद्यं पारिव्यज्य
इत्यस्मां गताः ।

ततः 'सीरन्ति ! सीरन्ति ! पुरोहित ! पुरोहित !' इति सश्रोत्रं
व्याहृतवतोराययोः पुनः स साधुराचन, यन्—

इति हिन्दी । नमस्तेयम् । अङ्गुष्ठपर्यन्तं सुन्दरं द्विषन्ति ।

मास्म गमन्ना यदि । अरण्यानां पुत्रं यदकं ।

छा बना कर, चन्दन, पुष्प और पूर से उसको पूजा कर, छन नर इस
प्यान-छा करके मेरे हाथ में एक मुगरी देकर कहा, 'कल ! इस मुगरी
को अपनी इच्छातुसार इस यन्त्र के किता कोष्ठ में रख दो ।' इसके बाद
मेरे एक कोष्ठ में मुगरी रख देने पर, छन नर उँगुलियों के चोंचों पर इस
गिनटा हुआ-छा वह मुँहसे बोला—

'कल ! पर का ओर कदापि न बना, क्योंकि एल्ले में पराँतों को
पारियों और बज्रलों में बहुत-से कम्बोज देश के चन्दन गुदरे गुदरे रक्त
के लिए पूर रहे हैं । दसुओं द्वारा लदेय पर निन्दुर आक्रमण होकर
देख तुम्हारे गाँव के सभी निवासी अन्ध-अन्ध पर छोड़कर दूर-दूर
चले गये हैं ।

इसके बाद इन दोनों के मुख होकर, 'सीरन्ति ! सीरन्ति ! पुरोहित !
पुरोहित !' वह कह उठने पर वह छत्रु चिर बोला—

दलीयो निधामः

दोऽपि शुभ्यङ्गनादिनिधि कथन संकेतित-भूमि-गुहरे
वा, परा पात्री दास-चतुष्टयमेकं पादयं सह नोवा महा-
जनन-परिपूर्तिता कोट्युभ-भूमि प्रति प्रस्थितः ।
दासद्वय, "साधं सत्यमेवमेवम्" इति समानकान्दोलन
उच्यते पुरोहितं; 'सतततः' इति मुन्यरीभूतेषु च कुटीरस्थ-

न सोचनीयं भवन्त्या किमपि तयोर्विषये, गन्तव्यं च तन्निजैव
गोचरीयार्थान्विते गिरि-गिरिषे कोट्युभे । क्रियत्समयानन्तरं तत्रैव
गिरिगिरि पुरोहितं च सह साक्षात्कारोऽपि भविष्यतीति प्रावोचत् ।

संकेतित-भूमेः गुहरे = विहरे । "गुरुर गुरुरं जिह्रे जीवं नान्तरं
पुनरिति" ति कोषः । पात्रीम् = उपमाश्रम् । "पात्री स्वादुपमाताम्रवि
विशिष्टव्यामलक्षणा" स्वमतः । महापद्मा एव पद्माननाः = विद्याः,
है परिपूर्तिताम् = भविष्यम् ।
सदुत्तमम् = नूतनम् बलवत् । अविद्यया मुक्तं विदुः, निर्दिष्टं विदुः
सन्ति ।

पुरोहित भी गुहाये गत्वादि निधि को किसी संकेतित स्थान पर
जाव कर, एक पाय, चार दास और एक बोरा साथ लेकर महापद्म-
केसरी शिवाजी के बीच-प्रदेश की ओर चले गये हैं ।

यह मुनकर, पुरोहित के लिए दिखाकर 'सब है, ऐसा ही है' कह कर
स्वाकार करने और कुली के सभी लोगों के 'हिर न्या हुआ' पर पूछने पर
गोपसिंह उस गुहाये के कथन को पुनः करने लगे—
"आप दोनों को उन दोनों के निषय में कोई बिना नहीं करनी
चाहिये और शिवाजी से उचित परवर्तनरूप बीच-प्रदेश को चला जाना
चाहिये । कुछ समय बाद अपनी बहिन और पुरोहित से गुहाय साक्षात्कार
होगा, ऐसा उस गुहाये ने कहा ।"

सतनु धम्म-सङ्घारेणेष “अहो ! अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम्,
धन्यो मन्त्राणां प्रभावः, धन्यमिष्टवल्गुम्, चित्रा धर्मनिष्ठा, अविन-
श्यस्तप प्रतापः, विलक्षणो नेष्टिको वृत्तिः” इति मन्द-स्वर-मन्दुरेण
भोवृजन-वचन-कलापेन संकृते तस्मिन् निकुञ्जे; “ततः क्वं प्र-
लितो ? कथमग्राऽऽयातो ? का घटना पटिता ? क उपायः कृतः ?
किमापरितम् ?” इति कुनूहल-परचक्षे विस्फारितनयने उद्ग्रीवे
समनुकूलितकर्णे विस्मृतान्यकथं कृतावधाने च परिकरवर्गं श्याम-
सिंहस्याके दक्षदृष्टिसौवर्णीं तदृष्टे संस्थाप्य, पातितोभयजानु सङ्-
पविश्य, राजत-राजिका इव कपोलयोरुत्तरोष्ठे च समुद्भूताः

अहो ! अहो, “ओत्” इति प्रथममंशा सतश्च प्रकृतिभावः । कुनूहलपर-
चक्षो=कीतुकाधाने, विस्फारितनयने=विकसितनेत्रे । शुभ्राक्षरेणादिर्दं
सर्वम् । उद्ग्रीवे=उत्थितकण्ठे । समनुकूलितकर्णे=अभिमुखीकृतनेत्रे,
विस्मृतान्यकथं=त्वक्तान्यमन्त्रे । पातितोभयजानु, क्रियाविरोधम् ।
राजतराजिका इव=दीर्घकणिका इव ।

सदनन्तर, भीरी की गूँज के समान, ‘अहो ! अहो ! आश्चर्य ! महान्
आश्चर्य ! धन्य है मन्त्रों का प्रभाव और धन्य है रघुदेव की शक्ति !
धर्मनिष्ठा कितनी आश्चर्यजनक है ! तप का प्रताप कितना अविश्वस्य
है ! ब्रह्मचर्य वृत्ति कितनी विलक्षण है !’ ओताओं द्वारा मन्द स्वर में
कहे गये इन वाक्यों से उस निकुञ्ज के गूँज उठने और फिर ‘आप
दोनों कैसे चले ! यहाँ कैसे आये ! कौन-सी घटना पटी ? क्या उपाय
किया ! क्या किया !’ यह जानने को उत्सुक होकर पास में बैठे सभी लोगों
के आँखें पाद कर, गर्दन ऊँची करके, कान लगा कर, अन्य सारी बातें
भूल कर सावधान हो जाने पर, श्यामसिंह की गोद की ओर देख
रही सौवर्णी को उसकी गोद में बिठाकर, घुटनों के बल बैठकर, दोनों
गाँवों और ओष्ठ के ऊपर की चाँदी के कणों के समान पसीने की बूँदों

अमृतं गन्धं प्रकाशं रूपं च भगवतो ममोक्तिमाश्रितम् । ए

नभभरने कविमुत्तमं कामनिःशिरसमम् । काश्चित्तादभ्यासो ब्रह्म-
प्रधानं गन्धरायं निर्वर्तमानं वरुणस्य भाग्यभागेभ्यः दुर्लभोत्तमं
विद्योत्तमं वरुणस्य विद्योत्तमं कविनयनेनेन भाग्य भाग्योत्तमं
विहितमनोरथ उपस्थिति मेऽप्यसौमि भस्मन्ममप्यदुर्लभम्-विद्योत्तमं
वेति । वेनेति ए प्रोति चरुणरात्मकं प्रारम्भितं विद्युत्तमं, तस्य माया =
सत्यप्रधानः शक्तिरित्येव । सा चेना भगवतो = समप्रत्युत्तममप्रा ।

ऐश्वर्यस्य समप्रत्युत्तमस्य यद्यप्यभिप्रायः ।

ज्ञानवैश्वर्ययोरेव वरुणा भग इतीत्या ॥

इति प्रसिद्धो भगवदर्थः—तद्वत्त्वम् भगवत्त्वम् । यथा = माया ।
गच्छतीति जगत् स्थावरत्वाप्युत्तमम् । सम्प्रोदिनम् = गम्यप्रवेण
मोदितम् ।

हिंस्रः = पातुरः । स्वच्छः = दूरः । स्वस्यैव पापेन विहितो भवति,
नतु तत्र निमित्तान्तरापेक्षा । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । तथाभूतम्
समत्वेन = विवेचयत्वेन । भयाद्विमुच्यते = अपगतमयो भवति । तत्राति
तस्य समत्वमेव हेतुर्न वीजान्तरापेक्षा । तदुक्तम् “न वतुं न कमांगि
लोकस्य सुवति प्रभुः” इति । एतेनाऽऽद्यनिश्चासे पारिनामशोभनाः माधूनाश्च
शोभना आचाराः प्रदर्शिता भवेयुरित्युपस्थितम् । सर्वश्रेष्ठं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्य
भगवतो मायया त्रिगुणात्मिका निर्वर्तरेव समास्थायत इति, काचन

भगवान् विष्णु की माया, जिसने सम्पूर्ण जगत् को मोह में डाल रखा
है, सकल ऐश्वर्यशालिनी है ।

दुष्ट हिंसक अपने पाप से ही मारा गया और सज्जन अपनी समत्वबुद्धि
के कारण भय से बच गया ।

पूर्व दिशा में भगवान् सूर्यदेव की यह लाटिमा है । यह भगवान्

वित्तिरी न तरोरवनरति । आलोकऽलोक-कृत-किञ्चिदलोकमोक्षे
ऽपि च कोक्षो न वराकी कोकीमुपसर्पति ।

अथेशीमेव मनोहारिणी शोभाम्बलोकयन्ती कम्पित-कुन्द-
कलापस्य, उन्मीलन्मालती-मुकुल-मकरन्द-चौरस्य पाटलि-पटल-
पराग-पुञ्ज-पिञ्जरितस्य शनैः शनैः परफरायमाण-शुक्ल-पिकादि-
पतगोन्मथ्यमानस्य पलाशि-पलाशाम-बिलुलतुपार-कणिकापहरण-

रिषधूः । स्वभावोक्तिः, अनुशास. । अलोकस्य = प्रकाशस्य, आलोक-
केन = विलोकनेन, कृतः = उत्पन्नः, कस्यचित् शोकस्य मोक्षो यस्य सः ।
कोक्षः = पक्षवाक्यः, वराकोम् = दुःखिताम् । 'बेचारी' इति हिन्दी ।

अथ समीरस्य स्वर्णमुक्तमनुमन्तौ पर्यन्तौ मुहूर्तमप्यपवाते
सम्बन्धः । समीरं विगिनष्टि-कम्पितः = दोलितः, कुन्दकलापः = नाभ-
समूहो येन तस्य । उन्मीलन्तीनाम् = विकस्यमानागच्छन्तीनाम्, मालती-
नाम् = बातीनाम्, मुकुलानाम् = कलिकानाम्, मकरन्दस्य = पुष्परसस्य
चौरस्य = अपहृत्यः । पाटलिः = "गुलाब" इति ख्यातः, तत्पटलस्य =
तत्समूहस्य, परागपुञ्जेन = धूलिजननेन, पिञ्जरितस्य = पीतवर्णस्य
परफरायमाणानाम् = पधास्रोतः कुर्वताम्, शुक्लपिकादीनां पतत्रैः =
पत्रैः उन्मथ्यमानस्य = विलोड्यमानस्य । इति गमितस्येति यावत्
पलाशिपलाशामेषु = वृक्षप्रभेदेषु, बिलुलताम् = विडुलताम्, तुपारा-

प्रकट कर रहे हैं, तबज तित्तिरी उत्तरोत्तर उच्च और अधिक उच्च स्था-
ले चोख कर अपनी काम-बाढा का प्रकाशन तो कर रही है, पर अभी पेड़
से नहीं उतर रही है, और चकवा पक्षी ने प्रकाश देखकर कुछ झोड़ वे
कम कर दिया है, फिर भी अभी बेचारी चकवा के पास नहीं आ रहा है।

तत्पदधान्, इसी प्रकार की मनोहर शोभा देखते हुए, कुन्द
की बँग देने वाले, खिल रही मालती की कलियों के मकरन्द की
चुपने वाले, गुलाबी के पराग से चोखे हो गए, धीरे-धीरे पंल पड़फड़
रहे शुक्ल-पिङ्ग आदि पक्षियों से उन्मथित किये गये, और वृक्षों के पत्तों के

निद्राणां कारणद्वयानाञ्च तासाः शोभाः पश्यन्ती, नडागत ए
 पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दोवर्णां समीपत एव मसृज
 पापाण-पट्टिकामु कुशामनानि मृगचर्मोसनानि ऊर्णोसनानि च
 विलीयोपधिष्ठानाम्, गायत्री-जप-पराधीन-दशनवसनानाम्, कलित
 छलित-तिलकालकानाम्, दर्माहुलीयकालङ्कृताहुलीनां मूर्तिमय
 मिव ब्रह्मतेजसाम्, साकाराणामिव तपसाम्, ॥ ३१ ॥ निव
 ब्रह्मचर्याणां मुनीनां दर्शनं कुर्वन्ती, कृतनित्यक्रियं परिपुष्ट-सुलसी
 भालिकाट्टिल-कण्ठं ॥ सिन्दूरोर्ध्वपुण्ड्रमण्डित-ललाटं रामचरण

भारेण=समविकसद्भारशब्देन, विद्राविता=उत्सारिता, निद्रा येषां
 तेषाम् । पम्फुल्यमानानाम्=विशराकृतम् । विशरणार्थं द्वाद् शिव-
 धातोर्दन्तात् धानच् । तुन्दमन्देयमिति तुन्दिकाः, 'तुन्दादिभ्य रल्' ।
 मकरन्देन=पुष्परसेन, तुन्दिलानाम्=विचकिलानाम्, भरितानामिति
 बावत् । मसृजपापाणपट्टिकामु=चिरुणयस्तरपट्टिकासु । गायत्रीजप-
 पराधीने दशनवसने=ओशी येषां तेषाम् । कलिता=धारिता, छलितः
 =द्योमनाः, तिलकालकाः=तिलकाः, येषाम् । "विचकलितकालकाः"
 इत्यमरः । दर्माहुलीयकैः=कुशनिर्मितांगुलिधारणीभैः, पविषेति बावत्,
 अलङ्कृताः=भूषिताः, अगुह्यो येषां तेषाम् । मण्डिपपुष्टं विविनष्टि-

वाले कारणद्वयों की उन-उन शोभाओं को देखते हुए, तालाब के
 छिनारे ही, मकरन्द से भरे लिले कमलों के पास ही चिहनों प्रत्यक्ष
 शिद्राओं पर कुशसन, मृगचर्मोसन और ऊर्णसन बिछा कर बैठे हुए,
 गायत्री-जप में रूने होटी वाले, सुन्दर तिलक लगाये हुए, कुश की परिणी
 से मुकुण्ठित उर्णजिबी वाले, मूर्तिमान् ब्रह्मतेज, साधार तपस्वा और
 अवतार धारण करके आये ब्रह्मचर्य के समान मुनियों के दर्शन करने
 हुए हम दोनों ने, नित्यक्रिया से निरुत हो गये, गले में बड़े दागों की
 हल्की सादा धारण किये, कन्ध पर सिन्दूर का ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा

भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती रेचर-चक्रस्य, कुण्डल-
मालागडलदिशः, दीपको मल्लागडभाण्डस्य, प्रेयान पुण्डरीक-
पटलस्य, लोक-विमोहः कोक-लोकस्य, अवलम्बो रोलम्बरदम्बाय,
तिन्दुकन्या येनचन दुष्टेन हता रक्षिता च सा साधुना, दुष्टनाशश्च
स्वभावेनैव संवृत् इति कथयामास । विष्णुनामपद्वेन मङ्गलमपि शिष्टा-
चारानुमितभुक्तिबोधितेति चत्तमं वाक्यं सूचितम् ।

कथाभारं धारयमाणो भगवदादिन्द्रकाशालयकमुनिर्देशरूपमपि मङ्गलं
समाधरति-अरुण एव इति । पूर्वस्यामिति-“दिशि” इति विशेषम् ।
मरीचिनां शालाज्वालोति मरीचिमालो = दीपविरतिः । बहुवीहितरसमा-
सौपत्यककर्मधारयदपट्टिमपि “न कर्मधारयान्मत्स्यमोषो बहुमन्दिभेत्तद-
भेदतिरतिर” इति वचनं न सार्धविकम्, ‘अमुष्मत्’ इति भाष्यप्रयोगा-
दिति ज्ञेयम् । अरुणः = दीपप्रदीपः । “ज्योतिषा रविरमुष्मत्” इति
भगवद्विभूतिमद्वैतादिनेन भगवात् सर्वथा स्तुत्यम् । अथाज्जितं विद्वन्दि-
पप भगवानिति । “दिनाय” इत्यन्त यालोकरुपाकट्टारो वैदर्भी रीतिः
प्रसादाख्यश्च गुणः । मणिः = रत्नम् । यथा हीरादिगन्धकारं धारयति
प्रकाशयति च पद्मार्पणं तथाज्जितं विद्वन्मन्तरतमोऽन्तरार्पं प्रकाशयति
सकलानर्थानिति मणित्वेन रूपम् । ते नमति यद्वन्ति गच्छन्ति
रेचराः = भगवाः, तेषां चक्रस्य = समूहस्य, चक्रवर्ती = सम्राट् । ऐश्वर्यं
प्रवर्तयति सम्राट्, दिनाधिपतिरिति सर्वं मद्राजमिति रूपम् । आसपडल-
दिशः = इन्द्रसम्बन्धिन्याः प्राच्या नाविवायमानायाः । कुण्डलम् = कर्णा-
भरणविशेषः । वत्तज्यमागेरवजम् । मल्लागडमेव भाण्डम् = सदनम्,
सत्यं दातव्यः । प्रसादाकलमथाज्जितरेव । पुण्डरीकाशाम् = इमं नाम्नाम्,
“पुण्डरीकं शिवात्मोद्यम्” इति विशेषमरकत्तु नात्र, रवेज्जलपारिवर्जित-
त्वाद्, पटलस्य = समूहस्य । प्रेयान् = अनिष्टदेन शिकः । कोकानाम् =
सूर्यदेव आकाशमण्डल के रत्न, नक्षत्रसमूह के सम्राट्, इन्द्र की दिशा
(पूर्व) स्त्री नाविका के कुण्डल, मल्लागडरुची रत्न के दीपक, चक्रवर्ती

विमुद्रा-मुद्रित-बाहुदण्ड-यक्षस्थलं हनुमन्मन्दिराभ्यर्क्षं प्रणतवन्ती ।
 तेन चाऽऽप्तम्—“यद्यानुष्मन्ती सर्पादि महाराष्ट्रैर्जं जिर्गमि-
 रपदेर्दापरेणय मन्त्रके सम्मूय एतद् राम-रज तडागे निमज्जतम्”
 इत्यथार्थ आयो तथैव व्यधिर्वाह ।

तदाहया यस्माजि परिघात च, तत्समीपे समुपविश्य, तेन च
 समन्त्र-ज्वरं कुश-जलेनाभ्युक्षितो हनुमदङ्ग-शिशुस-सिन्धूरेण चिटित-
 विट्ठी स्वकीयो सैन्धवो समाम्बय । ततः यस्मात्पानं म्यूढ-यय
 स्कानं वटिष्ठानं सुपरिणाहानं बाह्यामाह्वानं आवाभ्यां सह गन्तु-
 नास्मात्प्य मन्दिराभ्यर्क्षोऽमाविष्टः—

“कुमारी ! इतः पुण्यनगर-वर्त्यन्तं प्रतिगम्युत्पन्तरातं महाप्रजा-

पुत्रनिन्दक्रियामित्यादि । रामचरणचिह्नमेव मुद्रा—मुद्रणसाधनम्, तथा
 मुद्रितम्—अङ्कितम्, बाहुदण्डवधः—घातं यावत् तम् ।
 समाम्बय = भास्वी । म्यूढम्—पृथक्, यतो येषां तान्
 पुरश्चनिन्दर्याः । सुट्टं परिणाह = निराकृता येषां तान्, बाह्यान् =
 भीष्मचन्द्र के चरणों के चिह्नों से अङ्कित बाहुदण्ड और पञ्चायन कांले

हनुमान मन्दिर के अभ्यर्क्ष को प्रणाम किया ।
 उन्होंने आका दी कि, ‘जहाँ तुम दोनों अभी सरापाइ देव को जाना
 चारहे हो, तो धाँस ही इस रायरम को सतक में जगा कर, तापीव के
 कम में प्रवेश करो ।’ यह सुनकर इस दोनों ने देखा ही किया ।

उनकी आका से बंध पहिन कर इस उनके पास बैठ गये । उन्होंने
 मन्त्र पढ़ कर, कुछ ही हमारे ऊपर बस उड़कर और मारावत की मुँड
 के भीत में सगे सिन्धू का जिक्र लगाकर इस दोनों अपने पंढो पर
 उकार हो गए । फिर, कट्यवाली और निराकृता छार कांले पाँच छ. ६-७
 पुरश्चवाली को इस दोनों के साथ जाने का आका देकर मन्दिराभ्य ने
 कहा—
 ‘कुमारी ! जहाँ से तुम नगर तक, प्रत्येक दो कोठ के अन-

कवे]

एनीयो निधाय

निरुद्धं सप्रेतं यो वेन वन्द्य-दुःख-जात-रुद्धेन गण्टरीत-परिव्रजना-
 वन्द्यार्थोद्गोपयथा-परिव्रज-नरिणी-मायायावास-शोभा-
 शिव वयाप्रपन्न-नी माये माये पुटोरेण विरमन्ती नरनत्र मुग्धा-
 योउरे सवत्स-समुत्पन्न-भामिनी-माया-सं मुग्धेन विधानि-गुण-
 वन्द्यवन्ती नत्र नत्र पारिवर्तिनसदायकी दिनर्जनपरिवरेवाया
 दद्यात्तदमवाभिष्य । नरनत्रय विद्या-वृक्षस्य गन्धे पटम्ब-रज्ज्वा
 निजाननेनरायापय निवराप-नूर-नर-सागवा च यद्यानिनि
 सत्त्वदध्य द्यानु जटमवागादिप्यदि । अममसहपाथ निजानवय
 दिनर्जपमिव सं दग्गाया गृही-या पय्यंटाविमुमाख्य ।

दिनर्जातपयः - विषद्विभन दिने । "येयवुरन्तिभोक्कतिरये"ति
 कर्तारमभ्यस्यपनिपाता । अवाभिष्य भगच्छर । विद्ववावृक्षस्य =
 दिनर्जतुष्टय । "विनिर्वाच्ये" इत्या । "द्वयी" इति भाषा ।
 पय्ये = प्रकाशे "आदा प्रकाशः स्यात्" इत्यानुव्यायावधिष्ठते"
 तित्या । अवागादिप्यदि = प्रविष्टी । पय्यंटाविमुम् = चाल्यदुम् ।

एव दिवे । माधियां द्वाया दिगावे गये उम मागं—यो समी द्वाप
 नही जाना या एकता था, जो बगली पेड़ों के छपर से ईंध था और
 विशने—पहाड़ी से गिरे दिवाक सिङ्गाण्टों पर पूव कर जाने, अधित-
 कभों पर पड़ने, पारियों को बँडने तथा नरियों को पार जाने का बड़
 रटना पड़ता था—से पड़ते हुए, बीच-बीच में कुशियों में आयम
 करते हुए, रगदिष्ट भोवन और छापी समुचित समयों की सहायता से
 मुग्धपूर्वक निधाय करते हुए, कुशियों में परिवर्तित होते रहने वाले छा-
 पों के साथ, कुछ ही दिनों में हम दोनों भीमा नदी के किनारे
 पहुँच गए । यहाँ एक हमलों के गृध के तने में, लारी एलों से भरने
 पोंदी की चोंच का, सम्यप के गूर गृध (घड़गूर) की दात पर करने
 आदि रीति कर, हम दोनों ने स्नान करने के लिये जल में प्रवेश किया ।
 हमारे साथी ने अपने पोंदे की पंठ टटो करते हुए, उसी समय पड़
 कर उसे केरना (गुमाना) प्रारम्भ कर दिया ।

णाद्यपि दृष्टौ, इति सर्वं शुभमेव परस्तात् सम्भाव्यते—इत्येव
आचयोर्वृत्तान्तः ।”

ततो मुमुर्ते सर्वेऽप्येतद्वृत्तान्तस्यैव पौर्वापर्य-स्मरण-पराधीन
इयाऽऽसिपत । परिशेषे च पुटपाक्यदन्तरेव दन्द्यमानेन बाष्प
प्राप्तेन आबिलस्यापि अप्रकटित-बहिष्चेष्टस्य ब्रह्मचारिगुरोः प्रार्थ
नया देवशर्मणा तोरण-दुर्ग-समीपे हनूमन्मन्दिरे एव निवासः
स्थीकृतः । तदर्थं च प्रयन्धुं सर्वेऽपि कुटीरादुत्थिताः ।

इति तृतीयो निश्वासः ।



आसिपत = स्थिताः, परिशेषे = पर्यन्ते । पुटपाक्यत् = उभयतः
पाक्यत् । आबिलस्य = कटुपस्य, सुमितत्येत्यर्थः । शोकः किमूल इत्यमं
रुद्रीभविष्यति ।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्या तृतीयनिश्वासनिर्घणम् ।



दूर हो गया, पुण्डितजी के दर्शन भी हो गए और भविष्य में भी मंगल
का ही समाधान है । यही हम दोनों का वृत्तान्त है ।

तदनन्तर छण भर सभी लोग इसी वृत्तान्त के पौर्वापर्य का स्मरण
करते हुए से बैठे रहे । उसके बाद पुटपाक के समान अन्दर ही अन्दर
बन रहे तथा अंधुओं से धुमित होते हुए भी बाहर से दान्त ब्रह्मचारि-
गुरु की प्रार्थना से, देवशर्मा ने तोरणदुर्ग के पास हनुमान् के मन्दिर में
ही निवास करना स्वीकार कर लिया और उसी का प्रयत्न करने के लिये
सब लोग कुटी से उठ पड़े ।

शिवराजविजय के तृतीय निश्वास का हिन्दी-अनुवाद समाप्त ॥

“कार्य वा साधयेयम्, देहे वा पातयेयम्”

—सूक्तम्

मासोऽयमापादः, अस्ति च सायं समयः, अस्तं त्रिगमिषु-
नक्षत्रान् भास्करः सिन्दूर इव-स्नातानामिव चरण-दिगवलम्बिना-
नक्षत्र-वारिपाटनानामभ्यन्तरं प्रविष्टः । कलविद्धाध्याकैरुक्ते परि-
प्लुप्तौ नाडेपु प्रतिनिवर्तन्ते । यनानि प्रतिक्षणमधिकाधिकां दयामनां
कल्पन्ति । अधास्मान् परितो मेघ-माला पर्वतभेजीव प्रादुर्भूत ।

परपुरुषार्थिद भावयत्कं वाचिकं पत्रदादाय महता क्लेशेन होतुर्गुणं
विषय प्रतिनप्रदानपरिति तुदीपनिश्चासं यक्यामाय भविष्यत्पर्वीनरद-
न शक्तिवैशेष्यशक्ति—कार्यमिति । आगत्यभंगमिता पूर्णमासी यन्नि-
वर्ते स आपादः = पृथिः । सिन्दूरद्रवेण = नातोऽनवरसेन, स्नाता-
नामिव = रुक्तास्नानानामिवेऽप्युपेता । वदणदिक् = पश्चिमा, तदवलम्बि-
नम् = तदाभितानम् । कलविद्धाः = चक्राः “तीरेषा” इति हिन्दी ।
चक्रया भवत्पानि चाश्चैषा, “वदयथा पयि” स्वत्ये प्रावयः, तेषां हतैः =
शब्दैः । नाडेपु = कुलावेपु । प्रतिनिवर्तन्ते = प्रवर्तन्ते । पथिणा समग्रं
दिनमुद्धुव सायं स्वाशसतपे समिश्रिता भूरि वाचितं दुर्बन्तीतीव पथि-
वातिः । कलपन्ति = धारयन्ति । मेघमाला = वारिदपयि । पर्वतभेजीव =

• श्रीः •

चतुर्थ निधाम

“या तो कार्य सिद्ध कर देंगा, या शरीर को नष्ट कर देंगा ।”
आपाद वा महीना है और रात्रि वा समय । आतापक्ष पट्टपने के
रङ्गुक भगवान् पूर्ण, पश्चिम दिशा में स्थित सिन्दूर से नरावे हुए से तार
रंग के वारयो में प्रविष्ट हो गये है । जोसेष पथी अपने लोके के वारव
से पूर्ण होतरी में स्तोर रहे है । वन धन प्रतिक्षण अधिकारिक आ-प-
कापूर्ण (१५५५) होते आ रहे है । अस्मान् पारी कोर से परंरम-

सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य । अयमेव अहोरात्रं जनयति
अयमेव वत्सरं द्वादशमु भागेषु विभज्यति, अयमेव कारणं पण्य
मृतूनाम्, पण्य एवाहोरोकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्प्र-
दिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाऽऽश्रित्य भवति

चक्रवाकानाम्, लोकस्य = समुदायस्य । लोकस्य विमोक्तः = मोक्ष-
रूपकम् । लोकमिषुनाना रात्रिविरहः कविममयकृपातः । अथ बह्वर्त्रीरिपुर्दण्ड-
दीकाकृतमनवेक्षितमसाम्प्रदायिकश्च, बह्वर्त्रीरिपुर्मायाभिधेयस्य समारोपणं
देवोपपत्तेः । रोलम्भानाम् = भ्रमणानाम्, कदम्बस्य = सन्तुल्यस्य । अथ
लम्बः = आश्रयः । सर्वेऽप्यसौ व्यवहारः = ऐहिकामुक्तिफलक्षणो व्यापार-
तस्य, सूत्रधारः = प्रवर्तयिता । दिनस्य, इनः = स्वामी । “इनः सूर्ये प्रभो
इति कोशः । इनपदस्य एवामिसूत्रांमयवाचित्वेऽप्यत्राद्यपर्यायत्वमेवेति ज्ञेयम् ।
अथ स्वभावोक्त्याऽलङ्करोति तमेव भगवन्तम्—अयमेवेति । अयम-
रात्रिधारोरात्रस्तम् । रात्र्यपरेऽपि किण्वातुप्रवेशद्वारा विकाराकत्वमेतदीयमेवेति
भवति द्वितयमनकत्वमेवकारसार्थक्यञ्च नि विवेचनापटवः । जनयति = प्रादु-
र्भाषयति । वत्सरम् = वायनम् । द्वादशमु भागेषु = वेदादिमासरूपेषु ।
विभज्यति = विभज्यते । “भजो आमर्दने” इत्यस्य रूपम् । भवति चात्र
मानस शासनम् ‘अहोरात्रे विभज्यते स्या मानुषदैविके’ इति । पण्यमृतूनाम् =
बहन्तर्भीष्मवर्णोत्तरदेमन्तशिथिलानाम् । कारणम् = हेतुः । अयनम् =
सूर्यमार्गः । युगानाम् = कृतधेयाद्वापरकलीनाम् । भेदाः = विभागाः । एनेनैव
सूर्येणैव, भन्वादेशत्वादेनादेशः । कल्पभेदाः, पञ्चीतत्पुरुषः । कल्पभेद-

के प्रमाण, चक्रवाकौ का लोक दूर करने वाले, भ्रमरसमूह के आश्रय,
लम्ब व्यवहार के प्रवर्तक और दिन के स्वामी है । ये ही दिन और रात
के जनक हैं, ये ही वर्ष को बारह भागों में विभाजित करते हैं, ये ही ऋ-
तुओं के कारण हैं और ये ही उत्तरायण तथा दक्षिणायन (उत्तर और
दक्षिण मार्ग) का व्यवहाम्न करते हैं । इन्होंने ही सत्य, धेगा, वायव्य
और बन्धुग का भेद किया है, इन्होंने ही कल्पों का विभाग किया है,

इनेव प्रशमाम वृष्टिः । अन्तर्गतं दृष्टमिव न मन्मथोऽप्य-
मेवमावा, दृष्टो न पूर्वमेव ज्ञानावाः ।

अथ शमेनेव पार्वती-नदी-वेग इव निजंमाम प्रशमयन्तेति
मोक्षति । यतो नूतनार्थिषां साधनं प्रकटितं परम-हारीत्यनेन
परमहोऽतीत्यत्यन्तगीतानामिव ममसाधोक्त्वेन शोचनगोचिका-
शोभा प्रकाशिताम् । मासी न नक्षत्रान्तरमात्रेण दिगुत्तिरो-
त्मात् “मा भूद् दान्मोक्षं मद्रमनात् पूर्वमेव” इति सप्तम्यप्या-
शिष्टीश्वर-मिथिल-कवच-मिश्रिताः, पार्वती-शिव-विभूतयो-

रः । प्रशमाम = शांति-प्रदम् । दृष्टो मन्मथो कार्यं नावाक्यं इति
सप्तम्यप्याश्वमेनोद्देशकम् । अन्तर्गतं दृष्टमिव दृष्टम् । दृष्टो =
दृष्टः । कर्मणि कर् । कल्याणावाः = फलः ।

शमेनेव सन्नाहोक्तो यतो निजंमामि सम्भवः । उन्मिनेति पार्वती-
नदीवेग इवेति । यतो शोचनगोचिका शोचनान्तरादिना, प्रकटितो
शोभा ममसाधोक्त्वेति सम्भवः । दशदिशो दिग्विजि-नूतनया = अवि-
नशा, पार्वतीश्वर्या - पार्वतीश्वर्यापानेन, क्षान्तेनेन = निर्गन्तेन, प्रकटितं
परमहारीत्यम् = इतिप्रकाशितं, वेत्तेषाम् । उन्मिने-परमहारीति कीर्त्यनेन
परीतानामिव = स्वातन्त्र्यामिव । मिश्रीत्येव = अन्तरा-हारेण, “अन्तरा-

वृष्टि शान्त हो गई । लड़ाई से दृष्ट का तरह बादलों का समूह छिन्न भिन्न
हो गया और पूर्व दिशा में चन्द्रमा दिखाई दिया ।

इसके पश्चात् क्षण भर बाद ही पहाड़ी नदी के वेग की तरह आँसी
पानी भी निकल गया । फिर नवीन कल्पारा से धुले होने के कारण
अत्यधिक हरियाली को प्रकट करने वाले, करोड़ों गुह्र स्रूतों-से धतत-से
वृक्षों की नयनाभिराम शोभा दिखाई दी । चञ्चल चन्द्रमा की छाया से
वृत्ते हुये उत्साहवाला, “कहीं मेरे पहुँचने से पहले ही पाटल चन्द्र न
“लाय” यह सोचकर और भी जल्दी करना हुआ, शंशुर के स्वर्ग में
“कवच की संस्कार को मिलाता, दया के चक्र में धुली हुई पर्वतों की

श्रीशिवविनेन व्याहन्यन्ते ।

दुर्गाप्यश्रु—(तं शिवो नमस्कृत्य वीरेत्युक्त्वा) उपविश, उपविश ।
 श्री दुर्गाप्यश्रु शुभित-श्रीवनामप्यन्यत्त-बालभाषां ताव
 निमाहृति पदयन्, सर्पाकृतं विषारविनुमारेभे, यन्—“कथं
 विषार प्रेषितः भीमना महाराष्ट्रराजेन शुभ-विषय-सन्धानेषु”
 जन्मवाच्यं च “द्रष्टव्यमि प्रथमं किमेतेनाऽऽनोतं पत्रादिकम्”—
 नि निश्चय, “भगवन् ! प्रमुनेवान्ते मामाह्वय प्रदत्तमिदं पत्र-
 मने, तन् स्वीकृत्यताम्” इति कटिबन्धनाभिःसार्य ददतो हाता-
 न्नाय, दद्याय च सम्भावलम्बित-दीर-प्रकाशेन तूष्णी मनस्येव
 र्दित्वा, आकुञ्च्य, पूर्वोर्पाविष्ट-मग्नौ उपविश्य, पुनः पं नःपुन्येना-

शुभितं यं वनं यथा सामयि, न त्यक्तः—न दूरीकृतः, बालभाषाः =
 मर्कतं, यथा वाम् । आकृतम् = आचारम् । शुभविषयाणाम् = शो-
 विषयाणाम् । सन्धानेषु = अनुसन्धानेषु ज्ञानेषु । अवाधाय, तूष्णीमिति
 तैः । द्रष्टव्यमि, सामान्यमविवक्षति । मग्नौ = पर्यङ्गे । “उपवनं मग्नपर्यङ्ग-

है कि उनके लोग विप्री से बाधित नहीं होते ।

दुर्गाप्यश्रु—(नरमस्तक हुए सवार को 'शिवो' देखा कहकर) बैठो,
 बैठो !

उप दुर्गाप्यश्रु तदगाई को सुली हुई भी बालभाष का स्वागत न
 करने वाली उसकी मधुर आकृति को देखते हुए विचारते होते कि
 “भीमान् महाराष्ट्रराज ने ऐसे शुभ विषयों के ज्ञान के लिए हम बालक
 को कैसे भेज दिया” । शृणुमर रुककर “पहले देखू क्या पर कोई पत्र
 आदि लाया है”—यह निश्चय करके, “भीमान्श्री, स्वामी ने एवान्त
 में हुंसे पुन कर यह पत्र दिया है, इसे स्वीकार कीजिये”, यह कहकर
 कमबन्द से पत्र निजालकर देने वाले उस अन्धारोदी ॥ हाथ से पत्र
 लेकर, उठकर, सामने पर अवस्थित दीपक के प्रकाश में पुनः पत्र मन
 में ही पढ़कर तथा मोड़कर, पहले जिस दुर्गा पर बैठे थे वही पर

दुर्गाधीश—आन्ने क्षत्रियोऽसि ।

सादी—आम भीमन् ?

दुर्गा—[विमर्श] नान्येषामपत्यान्नेषं तेजस्वीनि दृढ-हृदयानि
रघुभक्तानि च भवन्ति । [पुनः सम्मुखमनुरोध] किं ते नाम ?

सादी—[अग्रलिङ्ग] आर्य ! मा रघुवीरसिंह इति वदन्ति
जनाः ।

दुर्गा—चिरञ्जीव [धनं विमर्श] अमु, सम्प्रति दुर्गान् वहिरेष
साम्मुख्येन हनुमन्मन्दिरे शशिमनिवाहय, इवमु किञ्चिदुदञ्चति
मरीचिमालिनि अत्राऽऽगत्य पत्रादिकं गृहीत्वा महाराज-निकटे
पातयति । रघुवीर—‘षाढम्’ !

इति निरो नमस्किया, प्रविनिवृत्त्य, पनस सारदातोऽदयमुन्मुख्य,

दुर्गाधेन नाम्न इति दुर्गाधेनं वन्देति इत्यत्र पुण्येय इत्यन्वयः ।
साम्मुख्येन = सम्मुख्ये । अविवाह्य = शपथ, उद्घोषति = उद्घोषं प्रोक्तु-
पति । मरीचिमालिनि = लूने, यातासि = गन्तासि । प्राणार्पणं वा पाते-

दुर्गाधेन—समता दे, धरिव हो ।

सुदसवार—हाँ ! भीमन् ।

दुर्गाधीश—(सुरका कर) अन्य की सन्तानें ऐसी सैनिकिनी,
दृढहृदय और प्रमुख नहीं होतीं । (पुनः सामने देखकर) दुर्गाध नाम
करा है ।

सवार—(अग्रलिङ्ग कर) आर्य ! लोग मुझे रघुवीर सिंह
कहते हैं ।

दुर्गाधेश—चिरञ्जीव । (धन भर एक कर) सैर, इस समय दुर्ग से
बाहर हो सामने वाले रघुमानजी के मन्दिर में ही रात बिताओ, सबेरे लूने के
कुछ निकलते ही वहाँ आकर पत्रादि लेकर महाराज के पास चले जाना ।
रघुवीर-सिंह ने “बहुत अच्छा !” यह कह कर, प्रणाम कर,

ततः परं च—“अगमै गुप्तसन्देशः कथनीया न वा ? ए स्वस्मादप्याच्छाद्य ममुक्तं प्रमुकर्णानिधीकरिष्यति न वा ? यन् लिपिः कस्यापि कर्णेजपस्य हस्तेऽपि पतेद्, इति वाग्मिरेवोदीरणीयो मम सन्देशः, इति परीक्षेयैनं वाग्जालैः—” इति विविच्छ दुर्गाधीशस्तेन बहुशः समालपत् । अन्ततश्च तं सर्वथा गुप्त-सन्देश-योग्यमाकलय्य, मनस्येव हर्षमनुभवञ्चिरं प्रशंसंश्च शिवराजं यन्— “नेत्रेषु विषयेषु कदाऽपि सतन्द्रोऽयतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोऽप्येवोऽबालहृदयोऽस्ति । तदस्मै कथाधिध्याम्यस्विलं वृत्तान्तम्, पत्रं च केचुचिद् विषयेषु समर्पयिष्यामि ।” एषमालपच्च—

स्वस्मादपि, यदा स्वत एवाऽऽच्छादयति तदा किमु वक्तव्यं परस्मादिति धनिः । एषञ्चाऽऽत्मवाची रसशब्द इति तत्त्वम् । कर्णेजपस्य = श्रवकस्य । “तत्पुरुषे कृति बहुलमि”ति विमर्करलुक् । परीक्षेय = परीक्षा कुर्याम् । तेन, “वृद्धो यूने”ति दर्शनेन सहार्थकशब्दाभावेऽपि तृतीया । सन्द्रया = आलस्येन, सहितः, सतन्द्रः ।

उससे आगे भी—“इससे गुप्त संदेश कहने चाहिए या नहीं; यह मेरी कही हुई बातों को अपने से भी छिपाकर प्रभु के कानों तक पहुँचा देगा या नहीं ? लिखा हुआ पत्रादि किसी भी चुगलखोर के हाथ में भी पड़ सकता है । अतः अपना संदेश मौखिक ही कहना चाहिए । इसलिए वाग्जाल से इसकी परीक्षा कर लें”—यह विचार कर दुर्गाधीश ने उसके साथ बहुत कुछ बातचीत की । और अन्त में उसे सर्वथा गुप्त संदेश के योग्य समझ कर, मन ही मन हर्ष का अनुभव करते हुए, महाराज शिवराज की बड़ी देर तक प्रशंसा की कि महाराज ऐसे विषयों में कभी भी असावधान नहीं रहते, वह सदा योग्य व्यक्ति को ही पदों पर नियुक्त करते हैं । अवश्य ही यह बालक होने पर भी अवाल हृदय वाला है, अतः इससे सारा वृत्तान्त कह दूँ और कुछ विषयों से सम्बद्ध पत्र भी दे दूँ । फिर ऐसी बातचीत की ।

दुर्गांघोषः—मन्ये क्षत्रियोऽसि ।

सारी—आम् भीमन् !

दुर्गाः—[स्मिता] नान्येषामपत्यान्वेवं तेजस्योनि दद-दद्यानि
मनुभक्तानि च भवन्ति । [पुनः सम्मुखमप्युचय] किं ते नाम ?

सारी—[अञ्जलि दद्या] आर्य ! मां रघुवीरसिद्ध इति पदन्ति
जनाः ।

दुर्गाः—धिरस्त्रीव [लण विराम्य] अस्तु, सम्प्रति दुर्गांघोषं दृष्टिरेव
सम्मुखीने इन्मन्मन्दिने रात्रिमतिपादय, इवस्तु किञ्चिदुपस्थानि
मरीचिमालिनि अत्राऽऽगत्य पत्रादिकं गृहीत्वा सदागात्र-नवटे
यातासि । रघुवीर—'बाढम्' !

इति शिरो नमस्किपा, प्रतिनिधूय, पनस-सागरातोऽजयमुन्मुख्य,

दुःखेन मय्यन इति दुर्गलक्षणं तत्संसारिवच्च पुण्येण द्रव्यम् ।
साम्मुखीने = सम्मुखीने । अनिवाहय = वापय, वदयानि = इत्यर्थं प्रा-
पति । मरीचिमालिनि = दूरे, यातासि = गच्छासि । प्रावणार्थेनाद् दाते

दुर्गांघोष—समगा है, धनिय हो ?

पुनसवार—हाँ ! भीमर ।

दुर्गांघोष—(दुःखता कर) अथ की कन्ताने देसो तेजसिनी,
दददय और मनुभक्त मरी होती । (पुनः सामने देखकर) दुःखता मय
कहा है ।

मय्यन—(अञ्जलि दिय कर) आर्य ! होय दुसरे रघुवीर निर
पते हैं ।

दुर्गांघोष—मित्रीव ! (लण कर एक कर) गौर, हम लक्ष्य डालें
बाहर ही गच्छने वाले हैं, मानक के दन्दिर से ही रात दिनामों, मरीचि दूरे के
दुःख निवृत्त ने ही वहाँ आकर पचाई है। कर दददय के दास बने हैं
रघुवीर निर ने "बाढम्" कहा है । कर कर कर, इत्यादि कर,

महाभारत-श्रीमद्विष्णुवाक्य-प्रयोगः

शिवराज-विजयः

प्रथमो विरामः

(विष्णुवाक्य-प्रयोगः)

स्वाध्याय-वाक्य-श्रीमद्वाक्य-प्रयोगः

पं० श्रीमद्वाक्य-प्रयोगः

विष्णुवाक्य-प्रयोगः

८५० ८० इत्युक्त्यादि-

श्रीकेशनाथमिश्रविग्रहिन-

भाषानुवादेन च

विष्णुवाक्य ।



प्रयोगः—

प्रयोग-श्रीः स्वर्गाय श्रीगङ्गाधर-प्रयोग-प्रयोगः

श्रीकृष्णधर्मप्रयोगः

प्रथमो निधातः

अनः पराङ्मनसा, अन्तरेव चरति पर्यति उहति च
वेदा एतस्यैव बन्दिनः, नायत्री अमुमेव गायति,
नद्या मादागा अमुमेवाहरहरपतिष्ठन्ते । अन्य एव कुलमूलं
मचन्द्रान्य, प्रणम्य एव विभेगायति उदेप्यन्तं भात्यन्तं प्रजमन्

समरापुगात्मकं कृपातः शब्दविदान् । परमेष्ठिनः = विधातुः । पराङ्-
मुपा = भन्तिमा पराङ्मात्मा कृपाता सत्त्वा । चरति = पुनः पुनः
वेति । पराङ्गन्तम् । पराङ्गन्तम् न वैराकरणसम्प्रदायसिद्धनवा
राकविबनानुमोदितमिति भूयो भूयो प्रयोगान् प्रदयंति । पराङ्गन्तवित-
नेनोपतिष्ठति-स्य कर्तुं निवेदितम् । बन्दिनः = सुतिगठभा । वेदाः
= कर्म-ननु-सामाधकाभिधाः । एतेन एवं नकारादिति युचितम् । "अन्त-
न्मावेद्यान्" इत्यधिकरणे हि निगूठनादिभ्योर्गायप्रसन्नमानत्वम् ।
उ एव "गायन्त्यमुमेव गायत्री" त्वेवकारमाहितं वाक्य स्वरसतः सङ्गच्छते ।
"गायन्त्यमुमेव गायत्री" इति तद्व्युत्पत्तिरप्यत एवोक्तवते । नद्या निद्या वेपी वे,
वेदपागण इत्यर्थाः । उपनिष्ठन्ते = उपासते । "उपादेवपूजा-सङ्गतिकरण-
मिवकरण-मर्थिभि" त्वात्मनेपदान् । भात्यन्तम् = हर्षन् । "भात्यन्तिवत्-
त्वात्परादिदोष्प्रत्यय" इत्यमरः । भात्यन्तं प्रगतिहेतुः । प्रणमो हि
स्वानुगतबोधनम्, तय प्रणम्य गुणेऽनु कर्तव्येति न विरोधितम् ।

इन्का आधार लेकर ही नद्या को पराङ् (सबसे बड़ा धार भन्तिम)
सत्त्वा पूरी होती है और ये ही धार-धार जगत् की सृष्टि, शालन और
संसार करते हैं । वेद इन्ही का बन्दना करते हैं, गायत्री इन्ही का गान
करता है और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण प्रतिदिन इन्ही का उपासना करते हैं ।
भगवान् रामचन्द्र के कुल के मूल ये सूर्यदेव धन्य हैं । ये भगवान् एवं
समा के प्रणम्य हैं, वह विचार कर, उदय होते हुए सूर्य को प्रणाम करता

कर्मिणः समगमनविराजतश्चरत् ।

भावार्थ — तेन चरन्नेतः परात्पुनर्विचित्रवशात् अन्तरादिदुर्गति-
नोत्पत्तेन, पीडा-समीक्षा-मार्गे ज्ञानं कथेन, मन्दवायु-मन्द-
धमर-धमर इत्यादि-धम-धमर एव पीयूषम् - ओहा परिमार्जितं । य-
त्नेन समप्रपन्ना केचिन् शुद्धोद्भूतवशात्, ईशोपेतवशात्, मन्दिर-
साधनवशात्, कोटिज्ञान विद्यारण्यवशात्, श्रीगोप विद्यावशात्, साक्षात्-
स्वर्गागमम् = भूतिप्राप्तम्, केदिकागमम् = साक्षात्प्राप्तम् । अन्तरादि-
दुर्गमम् = तमप्राप्तवशात् ।

भावार्थ — तस्य चरन्नेति भावः । न विचित्रोत्पत्तिः — य-
त्नेनानाम् = दुर्गति-दुर्गमप्राप्तम्, आमागमम् = यथावशात्प्राप्तम्, उते =
शोभायः, विचित्रवशात् = अचरणीयवशात्, द्विगुणिनोत्पत्तेन = साक्षात्-
प्राप्तम् । पीडासमीक्षया = मन्दवशात्, मयोरनं ज्ञानः = भावः, धमः =
मेरी यत्नेन । धमर-धमरा = धमर-धमर-धमर, मन्दिर-
साधनवशात्, विद्यारण्यवशात्, श्रीगोप-साक्षात्प्राप्तवशात्, साक्षात्-
स्वर्गागमम्, धमनाम् = धमनाम्, धमनाम् इत्यादि-धमरेण = शुद्ध-
मन्त्रादी मन्दिर-एव पीयूषम् = धमनाम्, तस्य शोभते = शोभा, परि-
मार्जिते = शोधिते, धमने — कर्मो यत्नेन । केचिन् = द्विगुणिनः,
स्वर्गागमः । शुद्ध-दसी-साक्षात्प्राप्तवशात्, तन्नेनाभिप्रेत्य निमित्तवशात्-
प्रत्यक्षवशात् से शुद्धोद्भूतं वेदो (चरन्ने) के ऊपर रहने हुए कुछ
समय बिताया ।

तब तक दूध के केन की छत्र की बीतने वाली चाँदनी से
द्विगुणिन उत्साहवाले तथा मन्दवायु के स्पर्श से ज्ञान परिभ्रम होने
एव छिद्रवाती हुई चाँदनी से निश्चित कणियों पर मँड़गते हुए भोगों के
शुद्धन मार से मन्दिर-रूपी अमृत कर्मों से शुद्ध हुए कर्मों वाले,
उस सवार ने, शुद्धों की मूक बनाने वाले, द्विगुणों की निश्चित करने वाले,
साक्षात्प्राप्तों की पलायित करने वाले, कोयल की निश्चित बनाने वाले और

चलमयाः स्वरालापाः । अथनेनैव तेनावगतं यत्, आलापा एते
कम्पा अपि पालिकायाः, सा च लज्जा-परवशाः; यतो नोच्चैर्गायति,

कोणे कपोत-पोतक-गङ्गा-मधुर-कपोतपालिकाधस्तम्भारम्भ-

विश्रुतत्वञ्च ध्वनितम् । पालिकायाः=आत्मवीर्यनमन्वी विद्यमानायाः ।
लज्जापरवशा = जगधीना । अत्राप्तपूर्णवीर्यनत्यातिपापत्यगता । कम्पानां
हि लज्जाधीनत्वं लक्षणोक्तिरिति । यतः=कम्पादतोः । मूढना इति
पाठः "अथो रहस्यमि"ति उद्दिष्टे पक्षे च तस्याधुत्यम् । त्वन्तु न
सम्भावना, रेकम्यवधानेन एव दीर्घात्माभावादिति ध्येयम् ।

कर्णविवर्धित्वाऽऽवृष्ट इत्यत्र लोकोक्तिरङ्गद्वाराः । दक्षिणा = दक्षि-
णतः, आग्रन्तमन्ययम्, तत्रोक्ते द्वितीया । कपोतपोतकानाम् = गावत-
कावकानाम्, गङ्गाद्वारेण = तत्राठःपञ्चमेन, मधुरायाः = मनोरमयाः,
कपोतपालिकायाः = सिद्धय, "कपोतगलिकायान्तु सिद्धं पुनर्पुनर्कमि"

यथा को निश्चित करने वाले काकती ध्वनिमय स्वरों के आलाप सुने ।

सुनने से ही उसने जान लिया कि ये आलाप किसी पालिका के ही
हैं और वह लज्जा से दबी हुई है, क्योंकि ऊँचे स्वर से नहीं गा रही है
तथा बड़े हुल में देहा हुई है, क्योंकि ओंछे की काफी इतनी उदार नहीं
हो सकती एवं वह दबी कर्माय सेही रहती भी है, कर्च कि स्वर स्थिरुक्त रहता
है, पूर्व दिशा में देही है, क्योंकि ऊपर से ही ये स्वर सरसियाँ आ रही हैं ।

इतके बाद जान पड़कर वह लीचे लगे से रघुवीरसिंह ने मन्दिर की
दक्षिण ओर से दक्षिणा करके, उसी दक्षिणा को घेरी रहे, उक्त
धन, मन्दिर के अद्वितीय में स्थित कपुतले के लगे के 'गुम्बद' के
मध्य एकर से कपोतपालिका (काकती)—के निचले लम्बे

निकटे समुपनम्ये अवालोक्तयश्च-यन् पूर्वस्यामस्ति विशाला पुण्य-
घाटिका, यस्यामतिमुक्त-लताः सौरभेण विष्णुपदमपि मदयन्ति,
यृथिका सुगन्ध-नगद्वन्द्वरितामपि हृदयं हरन्ति, पाटलि-पटलानि
अलि-पटल-रसनाश्चतुलयन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-विन्दु-सन्दो-
हैषमुमनी वासयन्ति । तस्यां मन्दिर-पूर्वद्वार-सम्मुखे यथास्थेका
परम-रमणीया ज्योत्स्ना-स्पर्श-प्रगटित-द्विगुणतर-चाक्रचक्रया

त्यमरः, अधः = निम्नादो, स्तम्भारम्भस्य निकटे । अधस्तम्भेत्यत्र “लपरे
शरि वा विमर्शनेषः” । अतिमुक्तलताः = माधवीलताः, “अतिमुक्तः
पुण्ड्रकः त्याद्वामन्ती माधवी लते” त्यमरः । सौरभेण = मीगन्धेन ।
विष्णुपदम् = नभः । “निर्विशिष्णुपदं वानु पुष्पाकाशविहायसी” इत्यमरः ।
यृथिका = मागध्याः । “अथ मागधी । गणिका यृथिकाऽम्बुद्रे” त्यमरः ।
हरिताम् = दिशाम् । हृदयम् = मध्यम् । अन्तर्गतमान्तमिति यावत् ।
हरन्ति = स्वापत्ताकुर्वन्ति । पाटलिपटलानि = मोषातमूहाः । “पादयिः
पाटला मोषा काचरधानी पलेरुहा । कृष्णान्ता कुवेरानी” त्यमरः ।
अलिपटलरसना = द्विरेषत्रातत्रिहाः । चतुलयन्ति = चम्रयन्ति ।
मालतिका = चातयः । “सुमना मालता चातिरि” त्यमरः । मरन्द-विन्दु-
सन्दोहैः = मरुन्दपुष्पदण्डैः । वसुमतीम् = वसुधाम् । वासयन्ति =
सुगन्धयन्ति । परमरमणीया = नितान्तहृद्या । वैदिकाविरोधमिदम् ।
ज्योत्स्ना = वीमुयाः, स्पर्शेन = संसर्गेण, प्रगटित द्विगुणतरं चाक्र-

११३, यत्ने होकर देखा कि—पूर्व में एक विशाल घाटिका है,
माधवी लताये अपने सौरभ से आकाश को भी मदमस्त बना
दे, बुढ़ी के पेड़ सुगन्धित तरुणों से दिशाओं के भी हृदय को हर
दे, पादरि के समूह भ्रमर कुली की रसनाओं को चम्रल बना रहे
और मालती लताये मरुन्द विन्दु के समूहों से पूरवी को सुगन्धित
कर रही है । उस घाटिका में मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने ही,
एक परम सुन्दर, शौंदनी के स्पर्श से द्विगुणित चमचमाहट को प्रकट

सोपानप्रदातृकृत-चतुर्थरोदा इति पक्ष-बलस्य-मृदुवि-विजित्वर-
बल-भाष-वेदिषा । अस्याभागेनानुमानाद्युपवेशाय रचितः पापा-
दमदा एव च निश्चय मद्रा, तेषामन्यतमे उपविष्टा चालिका ।
सर्वे दमेन सुवर्णम्, बलरदेन पुंरोहितान्, केशी रोहम्ब-कद-
म्बान्, सल्लादेन बलाभर-बलान्, सोचनाभ्यां गच्छानान्, अधरेण
कन्धुजीवम्, हासेन स्योन्तां विरम्बुर्पती, वयसा एषादशमिष वर्ष

चतुर्थम् = चालिकाभिरीयो वया सा । सोपानप्रदेण = आरोहणप्रदेण,
"आरोहण एवम् । सोपानमि" एवम्, अलङ्कृता = विभूषिता, अत एव
चतुर्थम् = वेदभोग्यकल्पानेन, अथरोदा = रियतिस्थानं यस्याः सा । इति-
पश्चात्ताम् = कादम्बकपालम्, "गद्यगद्यच्छराः, पर्व पर्व च तन्दरवि"
एवम्, बलशायः = निगायाः, छत्रेः = घोभायाः, विजित्वराणाम् =
जयनर्थाणाम्, धयलानाम् = स्वध्यानम्, माध्याम् = प्रसङ्गणाम्,
वेदिषा । मद्रा = उद्दिष्टानुसयः, उद्दिष्टार्थकान्वयेन, "द्विदोऽन्धः
रतिरेव मयङ्गाव" इत्यादी मसिद्धम् । चालिका, इत्येव कथानाविष्टा ।
"कमेन सुवर्णं विरम्बुर्पती" म्येदरूपेण सर्वान्वयाः । कमेन सुवर्णविरम्बा-
पेक्षया सुवर्णरोमानानादप्यर्थात् प्रतीपादकारः मृदुदयनसंवेद्यः ।
रोहम्बकदम्बान् = अमरसमूहान् । कन्धुजीवम् = रत्नम्, "रत्नवस्तु
कन्धुजी कन्धुर्जवच" इत्यमरः । "दुपहरिषा" इति दिव्यी । हासेन, हासस्य

करनेवाली हीन संविद्यी से सोनित, चार अक्कोरवाली, इस के पक्ष की-
ती डामरक छवि की चतुर्वेदी देवेत कपरी से नियमित, वेदी (चतुर्वेदी)
है । इस पर भाग्यनुती के बैठने के लिए कपरी से ही बनी हुई कुछ
कुर्तियाँ हैं जिनमें से एक पर एक चालिका बैठी है । यह चालिका
हासे गौर वर्ण से सुवर्ण का, मृदु शब्द से सुवच कोनित का,
से अमर-समूहों का, सल्ला से चन्द्रमा की वक्षा का, नेत्री से
, मृदुपदरी पुष्प का, हास से चालिका का विरम्बुर्पती

निकटे समुपनाये अवाञ्छोक्यन्-यन् पूर्वम्यामन्नि विशाला पुष्प-
 घाटिका, यस्यागतिमुक्त-लता मीरभेज विष्णुपदमपि मदयन्ति,
 गृथिका मुगन्ध-तर्द्धर्द्दगिनामपि हृदयं हरन्ति, पाटलिपटलानि
 अलि पटल-रमनाश्चटुलर्यन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-विन्दु-मन्दो-
 द्वेयं मुमती वासयन्ति । तस्या मन्दिर-पूर्वद्वार-सम्मुखे एवाम्बेका
 परम-रमणीया त्र्योन्ना-स्पर्श-वर्गादित-द्विगुणतर-चाक्रवर्त्या

त्यमरः, अध = निम्नान्, स्तम्भाग्भ्यम् निकटे । अधस्तम्भेत्यत्र “त्परी
 शरि वा विमर्शोपः” । अतिमुक्तलताः = माधवीलताः, “अतिमुक्तः
 पुण्ड्रकः त्याहामन्ती माधवी लते” त्यमरः । सौरभेज = मीरभ्येन ।
 विष्णुपदम् = नभः । “विषाद्विष्णुपदं वातु पुण्याकाशविहायसी” इत्यमरः ।
 गृथिका = मागधी । “अथ मागधी । गणिका गृथिकाऽग्वदे” त्यमरः ।
 हरिणाम् = विशाम् । हृदयम् = मध्यम् । अन्तरालप्रान्तमिति यावत् ।
 हरन्ति = स्वापस्त कुर्वन्ति । पाटलिपटलानि = मोषासमूहः । “पाटलिः
 पाटला मोषा वाचरषाश्च पलेरुहा । कृष्णान्ता कुबेराक्षी” त्यमरः ।
 अलिपटलरसना = द्विरेवत्रातद्विद्याः । चटुलर्यन्ति = चञ्चलयन्ति ।
 मालतिकाः = ज्ञानयः । “मुमता मालती चातिरि” त्यमरः । मरन्द-विन्दु-
 सन्दोहे = मकरन्दपुष्पदण्डैः । वसुमतीम् = वसुधाम् । वासयन्ति =
 मगन्धयन्ति । परमरमणीया = नितान्तद्वया । वेदिकाविदोषणमिदम् ।
 तत्काया = वीमुधाः, स्पर्शेन = ससर्गेण, प्रकृति द्विगुणतर चाक्र-

निकट, खड़े होकर देखा कि—पूर्य में एक विशाल घाटिका है,
 जिसमें माधवी लताएँ अपने मीरभ से आकाश को भी मदमस्त बना
 रही हैं, सुदी के पेड़ मुगन्धित तर्जनों से दिशाओं के भी हृदय को हर
 लेते हैं, पादरि के समूह धमर कुलों की रसनाओं को चञ्चल बना रहे
 हैं और मालती लताएँ मकरन्द विन्दु के समूहों से पृथ्वी को मुगन्धित
 कर रही हैं । उस घाटिका में मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने ही,
 एक परम सुन्दर, चाँदनी के स्पर्श से द्विगुणित चमकमाहट को प्रकट

सृशन्ती, श्याम-कौशेय-वस्त्र-परिधाना, श्वेत-विन्दु-सन्दोह-सङ्कुल-
रक्ताम्बर-कञ्चुकिका, कण्ठे एक्यष्टिकां नक्षत्रमालां धिभ्रनी, सिन्दूर-
चर्चा-रहित-धम्मिल्लेन परिशिष्टं पाणिपीडनमिति प्रकटयन्ती,
हस्ते पाटलि-कुसुम-स्तवकमेकमादाय शनैः शनैर्भ्रामयन्ती, तमेवा-
वलोकयन्ती च, अविदित-बहुल-तान-तारतम्यं मन्द-मन्दं मुग्ध-
मुग्धं मधुर-मधुरं किञ्चिद् गायतीति ।

वर्णः श्वैत्यमय इति कविसमयस्थातिः । श्यामं कौशेयवस्त्रम् = पट्टयसनम्,
परिधानं यस्याः सा । श्वेतविन्दूनां सन्दोहेः = समूहेः, सङ्कुलस्य = व्याप्त-
स्य, रक्ताम्बरस्य = रक्तयन्त्रस्य, कञ्चुकी = चोलिका यस्याः सा । बहु-
मीशो “शेषादिभाषे” ति अपि “केऽण” इति ह्रस्वः । एकावलीम् = एक-
यष्टिकाम् । नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमुक्तामयीम् । “एकावल्यैक्यष्टिका ।
सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैरि” स्पमरः । सिन्दूरचर्चा-
रहितेन = कुङ्कुमसम्पर्कशून्येन, अगृह्यः सीमन्ते सिन्दूरं न धारयन्तीति
प्रथा । धम्मिल्लेन = संयतवेशसमूहेन, “धम्मिल्लः संयताः कचा” इत्य-
मरः । पाणिपीडनम् = विवाहः । परिशिष्टम् = अवशिष्टम् । स्तवकः =
गुच्छः, तम् । अविदितं बहुलं तानतारतम्यम् = तानोत्कपोपकर्षो, यत्किञ्चित् ।
क्रियाविशेषणम्, अमेतन्नानि च ।

एनादश वर्ष का स्वर्ण-सा करती हुई, श्याम वर्ण के रेशमी वस्त्रों को
पहने, सफेद बुंदियों के समूह से व्याप्त रक्त वर्ण की कञ्चुकी धारण किये,
गले में सचाईस मोतियों से बनी हुई एकलरी (आभूषण) पहने, सिन्दूर-
सम्पर्क से शून्य सीमन्त (माँग) के द्वारा ‘अभी इसका विवाह अवशिष्ट
है’ यह प्रकट करती हुई, दाहिने गुलाब के फूलों का एक गुच्छा लेकर
उसे धीरे-धीरे घुमाती हुई और उसी को देखती हुई, तानों के क्रम-
विचार से रहित कुछ मन्द-मन्द मनोहर-मनोहर और मधुर-मधुर
गा रही है ।

यद्यपि नैतया सरस्वतो-सरूपया अज्ञान-भावोत्सह-शयनानि-
रिक्त-सांसारिक-सुखया कदाऽपि गानुं क्षिप्रितम्, न वा गाययानां
हस्ताः कर्ण-रसायन-मूर्धनाः कर्णातिधीकृताः, तथाऽपि पश्यमान-
मपि, श्रुत्यमानमपि, आस्रेह्यमानमपि, अदर्शित-रागविशेषमपि,
भारोद्धारोद्-भ्रुवाभोगालहारादि-कथा-शून्यमपि, निज-कल्पना-
माश्रयम्, तद्देशीय-साम्बन्धी-गानानुष्ठानम्, सुदीर्घ-न्यास-रक्षणं

अज्ञातं तातोत्सहयनारतिरिक्तं सांसारिकं सुगमम् = विषयानन्दो
पया तथा । कर्णयोः = भोजयोः, रसायनानि = भोजनमन्तरादिभ्यः, मूर्धनाः ।
कर्णातिधीकृताः = भोजनोपरीकृताः । मूर्धनानां भोजनोपरीकृते विषये
कर्णातिधीकरणरूपे भक्त्या समारोह इति समाधिर्नाम गुणः ।

गानमिदं परमसरसादि-भार्यादिभिः सम्बन्धः । गानं विशिनष्टि ध्वन्य-
मानम् = शब्दम् । श्रुत्यमानम् = विच्छिन्नशब्दम्, पूर्वोक्तसम्बन्ध-
मिति यावत् । आस्रेह्यमानम् = पुनः पुनश्चाप्यवगमम् । यद्यपि गाने
गुणताऽऽप्रेह्यमानतायास्तथाप्यनवसरे विधाने दोषवमेवेति चेदित्ययम् । न
दर्शित = न प्रकटकृतः, रागविशेष = ललितारविचमैः, विमिश्रम् ।
भारोद्धारोद् = सार-म-व-ध-नीनामुपेत्यम्, अश्रुद्धारोद् = तत्र-वेत्यम् ।
भ्रुवः = विषयम्, आभोग = समवेष्टितः, अलहारा = रसादिः,
लोकसाधनमपि । तद्देशीयानां साम्बन्धीयानाम् = स्थानिक-देशिकम्,

यद्यपि सरस्वती के समान रूपवाली तथा गीता की लहर के संगे के
अतिरिक्त किसी भी सांसारिक गुण को न जानने वाला; इस बातचीत
के न गो कभी गाना ही भोला था और न गायक का वाता के
मधुर कर्ण वाले कभी स्वर-रस-मयो को ही गुना था, फिर भी
स्वनिताया होने पर भी, पूर्वोक्त सम्बन्ध दम्ब होने पर भी, पुनः पुनः
उपस्थित होने पर भी, विमिश्रित गुण से श्रित होने पर भी, अज्ञान
भारोद्, भ्रुव (स्वर का विघटन), अलहारा एवं अश्रुद्धार अर्थात्
ताव से दम्ब होने पर भी, वेदक अर्थात् बहज-रस, रस दम्ब
रसक दम्ब के होने के कारण, कभी आवाज के रस दम्ब

गानमिदं परम-सरसं परममधुरं परमहारि चाऽऽमोत् ।

रघुवीरसिंहम् स्वरालाप-श्रवणेनैव पश्यतो विलोक्यैनां
कोऽहम् ? काहम् ? केयम् ? किमिदम् ? इत्यखिलं योगपद्येनैव
विसम्भार ।

अहो ! आश्चर्यम्, य एष फणि-फणा-फून्कारेष्वपि सक्त्रोष-
हृष्यक्ष-जृम्भारम्भेष्वपि भल्ल-तल्लज्जाम-परित्यर्धि-स्वर-नलर-भल्ल-

गानस्य = गानेः, अनुकल्पम् = तुल्यम् । मुमु दीर्याणाम् = ताराणाम्,
स्वराणां रणनम् = श्रवणं, यस्मिन्नुत । परमहारि = अत्यन्तारूपम् ।

अखिलम् = समस्तम् । योगपद्येन = एककालम् ।

“विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्गः किमु मरः ।

तप स्वयं मम हि परिनूदेन्द्रियमणौ

निकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापश्च तनुते ॥”

इति प्रार्चनपद्यं तदद्यापधारणायानुचिन्तनीयम् ।

अहो आश्चर्यम्, “ओरि”ति प्रणम्यत्वं प्रकृतिमावध १ फणिकणा-
फून्कारेषु = सर्पलपट-“फूँ”रवेषु । सक्त्रोषस्य = कुपितस्य, हृष्यक्षस्य =
वेशरिणः, “हृष्यः वेशरी हरिः” त्यमरः, जृम्भारम्भेषु = मुलम्भाश-
नोपक्रमणेषु । भल्लतल्लज्जानाम् = प्रशस्तभल्लानाम्, “मतल्लिका मचर्चिका
प्रकाण्डमुदतल्लयी । प्रशस्तवाचकान्यमूनी” त्यमरः । अपस्य परित्य-
र्धिनः = प्रतिद्वन्द्विनः, स्वराः = कटोराः, नलराः = नलाः वेपां ते च ते

परम सरस, परम मधुर और परम मनोहर था ।

रघुवीर सिंह उस स्वर लहरी के श्रवण मात्र से परवश होकर, उस
यालिका को देख कर, ‘यै कीन हूँ ? कहाँ हूँ ? यह कीन है ? यह
क्या है ?’ इत्यादि सभी कुछ एक साथ ही मूल गया ।

अहो ! आश्चर्य है । जिसने सगों के फनों की फुफ्फुकारों में भी,
क्रोधाग्नि सिंह की जमुहाई के समय भी, उच्चम मालों के प्रति-
स्पर्शों तेज नालून वाले रीढ़ों के (मारने के लिये) दौड़ने के समय

निजपणकुटीरान् निश्चकाम कश्चित् गुरुसेवन-पटुर्विप्रपटुः ।
 ("अहो ! चिररात्राय सुषोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव मद्

दलमेकमाकुञ्च्य, कृष्णशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुण्यावर
 कर्त्तुमांरेभे ॥

इत्या कुटी कुटीरः । "कुटीरमीशुण्डाम्बो सः" । गुरुसेवने पटुः = पटुः ।
 विप्रभासो विप्रस्य वा घटुर्विप्रपटुः = वाक्पण्यप्रसंचारी ।

अहो = साध्यसेवे नैतिक्कर्मानुष्ठानशालाओंवाले ।

'नोपतिष्ठति यः पूर्वा नोरास्ते यथ पश्चिमात् ।

स गृह्येद्गृहिर्कार्यः सर्वेभ्यश्च दिक्कर्मणः ॥'

इत्यादिभिः सन्ध्यावन्दनादिनित्यकर्मननुष्ठाने प्रत्यय-स्मरणेन ध्यान-
 दिना तत्कालाग्न्याहने रगभाविभो दिक्षोमः सताम् । चिररात्राय = पित्रु
 "चित्तव चिररात्राय चित्तव्याघ्राभिगर्भका" इत्यमरः । स्वप्नः = निद्रा, स
 जालम् = धानावः, स्वप्नपरतन्त्रेण = त्रायवेन । पुण्यमयः, "प्राज्ञः सु-
 दुये । पमार्थो धानुचिन्त्येति"ति मनुस्मृत्या । सपदि = सारम् । अथ
 धिनोर्मि = मन्त्रादि । कृष्णशकलैः = शकलैः, तस्या दलम् = पत्रम् । भा-
 क्त्य = नून विराज । कृष्णशकलैः = शकलैः । सन्धाय = समेज्य ।
 पुटके पुटकम् = मनुस्मृत्या । "दोना" इति हिन्ता । पुण्यागाम्, अथचयः
 = मण्डपः, लाने वा, लाने ।

दुभा, दोहे गुरुसेवने च कुटुम्बनामक शकल आनी पण्डित से चर
 निकल ।

'कोट, ये कटु देवदक नो-रा-स, निद्रा से बाजमे दलकर मीने वडा
 पुन-न-व नमो मर्तु दिना, यह रनारे गुरुका वा, सन्ध्यावन्दना वा मन्त्र ।
 है । एक से पुन पुन नो-इ-का-ई, यह कोपण दुभा वर, कोपे के एक
 ने वा कोपे वर, निनमी से कोपे वर, दोना वर वर, दू-व पुनने वर ।

[

वाधनेष्वपि घन-घनापन-घर्षण-विषद्वित-गैरिक-प्रात-जल-प्रपात-
 गिरि-गङ्गा-रोत्कालेष्वपि तरलतर-तरङ्ग-तोषावर्त्त-प्रतातुल-तरङ्गिणी-
 नोन्नतर-वेगेष्वपि गण्डक-गुण्डल-घोषा-घर्षण-घोर-घर्षणायोप-
 षोष्ठ-द्वान्तरेष्वपि घर्षणं नात्याक्षीन्, फलजातं न व्यस्मार्पणीम्,
 आकाशं च न व्यस्मार्पणीम्; तस्याधुना त्विदमन्यद्भानि, एतेते गात्र-

मङ्गाः=शब्दाः, "भक्षो भक्षुष्यन्धपोरि"ति कोकः, तेषां धावनेषु=मार-
 गधर्षणरिक्तगतिषु । घनानाम्=सान्द्राणाम्, घनापनानाम्=वर्धनिरत-
 वरिदानाम्, "घर्षो घातुकमर्षमो घु"शब्दो घनापन" इत्यमरः, घर्षणेन=
 घर्षणेन, विषद्वितेषु=विरहितेषु, गैरिकप्रातेषु=गैरिकमिश्रितप्रसरल-
 षट्सु, जलप्रपाताः=भासाः, तेषु ताडयानि यानि गिरिगङ्गाणि
 तेषाम् । प्रपातेषु=उत्सृजेतेषु । तरलतराः=अतिचञ्चलाः, तरङ्गाः=
 त्रयः, तेषु ताडयानां तोषानाम्=घर्षणाम्, आघर्षणशब्दे=अघर्ष-
 मरिकाभिः, आकुल्यानाम्=धुमितानाम्, तरङ्गिणीनाम्=नदीनाम्,
 प्रनरेषु=अतितीक्ष्णेषु वेगेषु=भोषेषु । गण्डकमण्डकस्य=तरङ्गि-
 निरस्य, घोषानाम्=नासानाम्, "घोषा नासा च नासिके" इत्यमरः,
 र्षणेन, घोरः=भयवहः, यो घर्षणायोप=घर्षणरहः, तेन घोरतराः=
 अतिघटोपाः, प्रान्तगाः=दूरस्थान्यानाः, तेषु । अनुप्रासोऽत्र गद्यचन्द्रे ।
 न-अत्याक्षीन्=न त्यक्तवान् । न व्यस्मार्पणीन्=न रिपुतन्त्रान् । न्य-
 गकार्पणीन्=न्यकारमकरोत्, न नीचेरमन्यतेति यावत् । त्विदमन्ति=

भी, एते कहते हुए शब्दों के घर्षण से निर्दिष्ट हुये और तेरह दिने
 १ वे पक्षों पर गिर रहा। जलराशियों वाली पराङ्गी गुफाओं में बहने
 में भी, अति चञ्चल तथा शले जल में विद्यमान जेबों के लिये से भय
 हुआ नदियों के तीव्रतर वेग में भी, जलो के समूह की नासिकाओं के
 घर्षण से उत्पन्न घोर घर्षण शब्द के कारण यदानक, दूर तक फैले
 दूरस्थ भागों में भी घर्षण नहीं छोड़ा, अन्तर्गत नहीं हुआ, अपने
 को पवित्र भय किया, इस समय उसी के भय पक्षीने से तर दो रं

गाननिर्दे परम-सरसं परममधुरं परमहारि वाऽऽसौ ।

रघुरोगसिद्धम् । स्वगालान्-प्रयत्नेनैव परमज्ञो विलोक्येः
कोऽहम् ? कदाहम् ? केयम् ? किमिहम् ? इत्यगितं योगयत्ने
विसम्भारः ।

भक्तो ! आश्चर्यम्, य एव फणि-कमा-हृत्कारेण्यपि सकोप
हृत्कार-गुह्यकारभेदेनपि भक्त-नल्लज्जाम-परित्यागि-पर-नगर-भक्त
गानस्य = गानः, अनुकल्पम् = दुःखम् । मुः इ शीर्षाणाम् = शीर्षाणाम्
स्वगाला रणजम् = शान्तिः, परिहरन् । परमहारि = भयान्तराकर्षणम्
अस्मिन् = ममाम् । योगयत्नेन = एककालम् ।

“ निधनं यत्तु न सुखमिति वा दुःखमिति वा

ब्रह्मदी निद्रा वा किम् शिविरेवम् किन् मया ।

नर एव मन वि शान्तरुद्विगमयो

‘विद्यया कोऽप्यन्तर्द्वयाः । य एवैव वदुः ॥’

इति शान्ति-नर-नृप-वदुः ॥

यष्टिः, विमनायते हृदयम्, अञ्चन्ति रोमाणि, क्षुब्धति च मनः ।
तन् कथमिदम् ? किमिदम् ? कुन इदम् ? अहह ! सत्यम् ! वीर-
बालोऽप्येव प्राप्यावसरम् आहतो मदन-मृगयुना ।

‘तावदकस्माद् “रघुवीर ! रघुवीर ! त्वं शिववीरस्य चरोऽसि,
गूढाभिसन्धिषु प्रेभ्यसे, अल्पं तव वेतनम्, साधारणो तवावस्था,
खड्ग-धाराचलेद्दनमिव कष्टतरं तव कार्यम्, कैशोरं वयः, अवदु-

स्वेदयन्ति मयन्ति । एजते=कम्पते । विमनायते = वैकुण्ठमधिगच्छति ।
अञ्चन्ति = उदगतानि मयन्ति । क्षुब्धति=धोममनुभवति । मदन एव
मृगयु=व्यापस्तेन । रूपकम् ।

वीरसम्प्रधानेऽस्मिन् काव्ये तदंगतया विप्रलम्भशृंगारवर्णनमिदम् ।
शौवर्णारघुवीरसहाबालम्बनविभावां, रघुवीरधैर्यध्वंससमुद्भूताः स्वेदगात्र-
कम्पनादयोऽनुभावाः, निर्वेदादयश्चात्रेवाभ्या व्यभिचारिण इति विभावनीयम् ।

तावदकरमादन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितः पुनस्तानि वैधिरेति सम्बन्धः ।
“शिववीरस्य चरोऽसि” त्यनेनोद्यमनस्यकिणस्ते न युक्तमिदमिति व्यञ्जितम् ।
तथा च प्राक्तनं पद्यम्—“न गणित यदि बन्ध पयोनिधौ, इराक्षिस्पर्शविभू-
रवि विस्मृता” । गूढाभिसन्धिषु = गुप्तहृत्पेषु । अल्पम् = सत्कीर्तिवां-
हायोग्यम् । नायक इव तदानीं दरिद्रा अलम्ब्यभूतपथोदास्य कामपि लब्ध्वा
स्वयं तस्याश्च जीवनं व्यर्थयन्ति स्मेति विग्रहये । साधारणो तवावस्था,
लोकोक्तिरिमम् । अवस्था = दशा । ययोऽर्थक्ये तु—“कैशोरं वयः” इत्यस्य
वैयर्थ्यापाठ इति ध्येयम् । खड्गधाराया अवलेद्दनम् = रसनयाऽऽत्मादनम् ।

है, मन खिन्न हो रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, हृदय क्षुब्ध हो रहा
है । तो यह कैसे है ? यह क्या है ? यह कहाँ से है ? अरे ! सचमुच इस
वीर बालक को भी शिवाजी कामदेव ने अवसर पाकर पापउ कर दिया ।

तब तब अकस्मात् “रघुवीर ! रघुवीर ! तुम शिववीर के दूत हो,
गूढ़ कार्यों में भेजे जाते हो, तुम्हारा वेतन अल्प है, स्थिति साधारण है,
तलवार की धार को चाटने की तरह अत्यन्त कठिन तुम्हारा काम है,

मनो धूर्णयन्ती सौन्दर्य-सारावतार-स्वरूपामैक्षिष्ट ।

अथ सा तु “सौवर्णि ! सौवर्णि ! तातस्त्वामाकारयति”—इति कस्यापि बटोरिव वाचमाकर्ण्य, “आम् ! एषा आगच्छामि”—इति मधुरमुदीर्य, अधाय, वेदिकागोऽवतीर्य, वाटिकायामेव दाक्षिणतः सुधा-धवलमेकं गृहं प्राविशत् ।

रघुवीरसिंहस्य समीपत एव गतेति गमन-समये सचकितं सगति-स्वप्नं परिपृक्त-मीर्य “कोऽयम् ?” इत्येनं क्षणमवलोक्या-मास । परतश्च “स्यात् कोऽपि” इति समुपेक्ष्य गृहं प्रविष्टेत्यपगोऽपि

त्यवस्थापितपाभिप्रायम् । चुचुम्बिपन्तीम् = चुम्बितुमिच्छन्तीम् । व्यष्टुम-भिलपन्तीमिति यावत् । कुसुमकुङ्कुमलघूर्णनज्याजेन = कुसुमलिकापरि-चालनकपटेन । धूर्णयन्तीम् = परिचालयन्तीम् । सौन्दर्यसारस्य = सुन्दरतातत्त्वस्य, अवतारस्वरूपाम् = देवधारिणीम् । पिण्डीभूतसौन्दर्या-मिति यावत् । आगच्छामि, वर्तमानकालोप्ये “वर्तमानवद्वा” सुधाधव-लम् = चूर्णकसितम् । चकितेन = विस्मयेन सह वर्तते यस्यां क्रियायान्तम् । सगतिस्तम्भम् = सगमनावरोधम्, परिपृक्तमीर्यम् = परिवर्तितकन्धरम् ।

धूरती हुई सौन्दर्य के सार की अवतार स्वरूपा उस (कन्या) को देखने लगा ।

और वह “सौवर्णि ! सौवर्णि ! पिता भी तुम्हें मुझा रहे हैं” इस प्रकार किसी बटु की सी आवाज सुनकर, “अच्छा आ रही हूँ” ऐसा मधुरता के साथ कह कर, उठकर तथा वेदी से उतर कर, वाटिका में ही ; ण की ओर स्थित एक चूने से पुते हुए स्वच्छ घर में मुस गई ।

वह रघुवीर सिंह के पास से होकर ही गई । अतः उस समय उसे उसने कुछ चकित नेत्रों से निस्तब्ध हो, कुछ रुककर, गर्दन घुमाकर “वह कौन है ? इस प्रकार क्षण भर रघुवीरसिंह को देखा, फिर “कोई होगा” इसी प्रकार उसकी उपेक्षा करके घर में मुस गई । घर (उस

विपने]

चतुर्थी निभासः

ज्ञानो वशीकार-प्रयोग-प्रचारः ।

रघुवीरञ्च सतः प्रतिनिवृत्त्य, पुनः स्वाधिकृत-कोण-गोष्ठ-
मेवाऽऽपाठः ।तत्र च गवाक्ष-जाल-प्रसारितेः राजन-मार्जनी-निभैः
कलानिधि-कर-निकरैः समूह्य संशोषित इषान्वकारे, पय-
पयोधि-फेनैरिवाऽऽमृते शयनीय-पीठे उपविश्य, कदाचिदथ इय
मुखं विदधन्, कदाचिन् कपोलं करे कलपन्, कदाचिज्जाला-क्रियाविशेषणानि । वशीकारप्रयोगप्रचारः = स्वायत्त-वशविधानप्रसाधः ।
रघुर्विजयपरमिदम् ।

स्वाधिकृतकोणकोष्ठम् = निर्दिष्टत्वागतसरनम् ।

गवाक्षजालप्रसारितः = वातायनान्भ्रम्यातेः । अतस्त्वेवं राजवी =
दीप्यमयो मार्जनी = बहुधा "साह" इति रि-री, वसुध्वेः । कलानिधि-
करनिकरैः = चन्द्रकिरणमयैः, समूह्य = संक्षिप्त । "रवण कर"
इति भाषायाम् । संशोषिते = दूरीकृते । "नक्षत्रमूर्धं भं ताया तारका-
पुङ्गु वाऽक्षिपाम्" इत्यमरः । पय-पयोधिफेनैः = धर्म-स्वाधिकृतिकरैः ।
आमृते = विरहिते, शयनीयपीठे = परपङ्के । विदधन् = दुर्धनः ।
"नान्वत्ताच्छुति" इति कुम्भियेयः । जालान्तरेण = वातायनान्भ्रमेण ।दुष्क के लिए) एक ओर दृष्ट्य वशीकरण के प्रयोग का अनुष्ठान हो
गया ।रघुवीर वहाँ से लौटकर फिर अपने अधिपति होने के कर्म में ही
बसा भाग्य ।और वहाँ पर लिवलियों की बाली से प्रविष्ट चारों ओर लड़ के
कमान करमा की निर्यो के समूह से रवण कर के अन्धकार के साफ
सा कर दिखे जाने पर, दुग्ध-समुद्र के फेन का लहर लित हुए दिना
पर बैठकर कभी नीचे की ओर मुँह लटकाना, कभी हाथ

न्तरेण तारकमण्डलमवलोकयन्, कदाचित्किमिति मृषा-चिन्तनैरित्यात्मनेवाऽऽत्मानं सान्त्वयन्, कदाचिन् 'निद्रे ! कुत इव विदुनाऽसि ?' इत्यशान्तिं विधत्, पार्श्वतः पार्श्वे परिवर्त्तमानो होरामेकामयापयत् ।

ततश्च "अहह ! शिववीर-कार्येष्वसम्पादितमेकमयशिष्यते" इति किञ्चिन् मंग्मृत्येव, कशयेव ताडितः सपराधाय 'मन्दिर-पुरोहितः कः ?' इति कांश्चिदापृच्छय, केनचिन्निर्दिष्टमार्गस्तस्यामेव पादिकाया तदेव चालिकया प्रविष्टचरं गृहं प्रविशेत् ।

तत्र धेरुमिन् प्रकाण्ड-कोष्ठे निग्लिष्टं यद्—एकवामारकूट-

तारकमण्डलम् = भनवम् । सान्त्वयन् = समाश्रयत् । विदुनासि = पढाविनासि । पार्श्वतः पार्श्वे परिवर्त्तमानः, रोदस्यापे भोके "करव बदलते हुए" इति समभिधीयते । लोकोक्तिः । होराम् = परिकाम् । अयापयन् = अत्यश्रयत् । कशया = मथवाडन्या, "चातुक" इति भाषा । सर्पादि = सरसा, निर्दिष्टमार्गः = प्रशिक्षणार्थः ।

प्रकाण्डकोष्ठे— विद्यालये कोष्ठे । "बड़े कमरे में" इति हिन्दी । भार-

माल रम्यता, कभी कभी के भीतर से तारायन्त्र को देखता हुआ, कभी "एते ज्येष्ठ के विद्यार्थी से क्या लाभ" इस प्रकार स्वयं अपने को सम्बोधना देता और कभी "निद्र ! तू कहीं थकी गई" इस प्रकार भयान्त्र होता हुआ, इधर-से उधर करघटे बदलता रहा । इस प्रकार एक पक्ष बत गया ।

ततश्चान् "अरे ! शिवजी के कामों में एक अभी बाकी हो गई" इस प्रकार कुछ स्वरचला करके, गुरुश्रीसिंह जी से प्रार्थना-सा तुरन्त उठकर "मन्दिर के पुजार को कहीं दे ?" इस प्रकार कुछ दौड़ा से दूर कर किता के हाथ सार्ने लडाके जाने पर उसी क्षण ने, दिन्ने यह बर्तिका गई थी उसी घर में, प्रविष्ट हो गया ।

एतद् एव एव कमरे में देखा कि—दिन को ६ बजे में एक

बनुषों निधास.

[हिंदी]

गौरिकादी प्रदीप एको जलानि, पुन-काशामनाज्जनकानि आम्भुनानि
 भारत-वेष्टनेषु बहुल पुनकानि शीटिकां अधिष्ठापितानि, नाग-
 दन्तिकासु धीन-पद्मानि पद्मम्बरानि पलम्बन्ते, एवमिन् शरावे
 ममोपात्रम्, छेदनी, पुरिका, गौरिकम्, उपनेत्रं चाऽऽयोजित-
 मभिः। पात्रान्तरे च ग्राहिरे नृजम्, मांडं पल-वेष्टिकानि नागवल्ली-
 शानि, पुमानि, शकुन्ता, देवकुसुमानि, एलाः, जाति-पत्राणि,
 पूरे च विन्यासमभिः। कर्मभ्यः एष च महोपबर्हमेकं पुन

हृदीपिकायाम् = पात्रविशेषाविकायाम्। "शीटिः शिषाम्भारदृ" इत्य-
 माः, दीपिका = दीपस्थापनायै निमित्तं वस्तु। "दीपद" इति हिन्दी।
 भारतवेष्टनेषु = ईश्वरकर्मभ्यः। "लाकरी का वेडन" इति हिन्दी।
 शीटिका अधिष्ठापितानि = उपवेशितानि, "अविष्टीहृयाली कमें" इति
 कर्मभ्यः। शरावे = विस्तृत-शरीरे। "उलनी" इति हिन्दी। गौरिकम्,
 विविक्तपादुकाश्च दूरीकरणार्थम्। पात्रान्तरे = तथाविधेऽम्परायै। नाग-
 वल्लीदन्तानि = ताम्बूलवल्लीरूपाणि। "तामूलवली ताम्बूलो नागवल्ली"
 त्वमाः। पुमानि = कसुमानि। शकुन्ता = पुनकया, "शरीका" इति हिन्दी।
 देवकुसुमानि = स्वच्छानि। एलाः = पुष्पीकाः, "पुष्पीका चन्द्रकालिका
 निपुटिंहिंहि" त्वमाः। जातिपत्राणि = मासदीपयानि। कपूरम् =
 धनसारः। महोपबर्हम् = महादुपयानम्। "यसनद" इति हिन्दी। सहा-

दीपक मल रखा है, कुछ और कास के अनेक भासन बिछे हुए हैं, एक-
 वेडनी (लाकरी का वेडन) में बहुत-सी पुष्पकं चोखियों पर रखी हुई
 हैं, ग्रीष्मों पर चोखी और हुए हैं करक रहे हैं, एक प्याले में दावात,
 कम्म, चाक, मेरु और चम्पा रखा हुआ है। दूसरे पात्र में कथा,
 चूना, माले कपड़े में लपेटे हुए पान, सुगरी, सरंता, छबग, दवायची,
 माकड़ी के पत्ते और कपूर रखा है।
 उनके बीच में ही एक बड़े यसनद पर पीठ डेके हुए, पैरों को

पुनश्च तं प्रणम्य, जिगमिपन्तमुवाच, यत्—

“तावद् बहिरेबोधाने पर्यट, यावद् हनुमत्प्रसाद-सिन्दूरं प्रेषयामि, यत्कृततिलको दुर्द्धर्षो भवति शत्रूणाम्” इति ।

स च तथेत्युक्त्वा बहिरागत्य पर्यटन् पूर्वेषुः सौवर्ण्यां सनाथितां वेदिकां समायातः, स्मृतवांश्च पूर्वदिन-वृत्तान्तम्, अवलोक्य च सौवर्ण्यध्वुषित-चरं पापाण-मञ्चम् । तावन्निपुणं निरोक्ष्य दृष्टवान्-यदेका एकयाष्टिका मौक्तिकमाला तत्र पतिताऽ-स्तीति, ताञ्चोन्मथ्य तस्या एवेयमिति निश्चित्य, तस्यै समर्पया-मीति विचार्य, इतस्ततश्चक्षुर्निचिक्षेप ।

अथ व्यलोकयद्-यद् चाटिकायामेव कोशलाऽपि कद्दलीदल-पुटकमेकं यामकरे संस्थाप्य, दक्षिण-कर-पद्मवेन कुसुमपत्रद्वान्

सनाथिताम्=अधिष्ठितान् । सौवर्ण्यां, अध्वुषितचरम्=सू-
क्ष्मविष्टम् । पापाणमञ्चम्=प्रभवेदिकाम् । एकयाष्टिका=एकाक्षी,
मालाविरोधः, “एकयात्येकयाष्टिके” त्वमरः । निचिक्षेप=निक्षेपे ।

कुसुमपत्रद्वान्=पुष्पभ्रमरिकाः । “तिलकी” इति हिन्दी ।

इत्युक्तं रघुवीरसिंह से कहा, “तब तक बाहर उद्यान में ही रहजिये, अभी हनुमानजी के प्रसाद का सिन्दूर मेघता हूँ जिसका तिलक लगा देने पर व्यक्ति शत्रुओं के लिए दुर्द्धर्ष हो जाता है ।”

रघुवीरसिंह ‘यहुत अच्छा’ कह कर, बाहर आकर, पत्ता हुआ, पिछले दिन सौवर्णा से सनाथ की गई चेदी तक आया, पिछले दिन के वृत्तान्त को स्मरण किया और जिस पत्थर की चट्टान पर सौवर्णी बैठी थी उसके दर्शन किये । ध्यान से देखने पर देखा कि मोतियों की एक एकलरी माला वहाँ गिरी पड़ी है, उसे उठाकर, यह उसी की है यह निश्चय करके, ‘इसे उसी को दे दूँ’ यह सोचकर इधर-उधर दृष्टिविधेय किया ।

उसके बाद उसने देखा कि कोशला भी वहीं-वहीं है । बाईं हाथ में केने के पत्ते का एक दोना लिए, दाहिने हाथ में तिलकियों को उठाकर,

हृत्पुनः सदनित्तमामय, भीषणीनिर्वा मानन भित्तिलादामान्त्रिय
नभद्रमाश्री नभद्रमाश्रीभान, पवित्रममनि श्रुतम-नीषनोद्रे-
सुम-रहितानि न गदहानि नभ्याभौ ।

तत्तमामां भीनेनी रीतायगायायाम्, श्रुतं पुनर्मन्दिशामायाय
देवशमं गोद्वयममप्रायेनाद्वनोनं सिन्दूरमादाय पुनरायामास,
मायन-नन्दनं भीषणा तोषादुमांशु मिहदुमां प्रतप्ते ।

इति चतुर्थो निष नः

इति प्रथमां विगमः

“मोने स्वकाकाग” दिव्युक्तान् । नभद्रमाश्रीम् = स्मृतिश्रुतिमोर्क-
कमरी पूर्वाधामे काशीन् । श्रुतममस्य = विगमप्रथम, दौषनस्य =
ताकायस्य, उद्रेदस्य = भाषिमांस्य, लभमभिः = चिदेः, रहितानि =
एवमनि, न अग्राभीम् = गृहान् । मायननन्दनम् = आपुपुनम् ।

मायन-शाम्प प्रकाचार्य पः ककेन पं. मता ।

मगकया कर्षत्रेन रिद्-भागवत-मुमुना ॥

गिद्विप्रमहि-शिप्येन गमर्षि-शर्णा मता ।

शिवसहस्रदस्य वयस्यायभाभिना ॥

पाण्डेयश्रीस्त्रिगामिषेयेन सदस्य ।

शिवप्रत्य विजये वैवयन्ती विवाशिता ॥

इति श्रीशिवरात्रिविजयवैवयन्त्यां चतुर्नभामविषयम् ॥

आदिमविषयविषयण समाप्तम् ।

कर, उसके पास आकर, मन की दीवार पर सदृश का विष बना कर,
उस मुक्तामाला को उसके गले में डाल दिया, पर श्रुत दौषन के सङ्ग
चिह्नों से रहित उसके पवित्र अंगों का स्पर्श नहीं किया ।

तदनन्तर, कोशज के मोनपूर्वक ही दूसरी ओर चले जाने पर, स्वयं
पुनः मन्दिर के द्वार पर आकर, देवशम के धिय छात्र द्वारा लाये गये
सिन्दूर को लेकर, पुनः घोड़े पर सवार होकर, हनुमानजी का स्मरण कर,
तोरण दुर्ग से सिंह दुर्ग की ओर चल पड़ा ।

शिवरात्रिविजय के चतुर्थ विःभास का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।

शशर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽम्बा-चपलिन-चञ्चु-
पतङ्ग-कुन्दाऽऽक्रमणाधिक-विनन-शाख-शान्ति-समूह-व्याप्तः सुन्दर-
कन्दरः पर्यतखण्ड आसीत् ।)

यावदेष ब्रह्मचारी यदुरालिपुष्टमुद्युत कुमुमकोरकानवचिनोनि;

प्रकारेण, पूर्वतन्म=परितम् । विशेषणार्थमानि चत्वारि सरसो विशेष-
भूतस्य । दक्षिणत=दक्षिणस्या दिशि । पर्यतखण्ड आसादित्यन्वयः ।
पर्यतखण्डः = प्रत्यन्तपर्यतः “टेकरी” इति हिन्दी । निश्चिन्ति विशेष-
वर्णप्रयेण=निर्झरस्व=प्रवाहस्य, “जातिवाही निर्झरो सर” इत्यमरः, शशर-
ध्वनिता ध्वनितम्=नादितम्, दिगन्तरम्=दिक्प्रान्तभागी यस्य सः ।
शशर इति जनशब्दानुकृतिः । फलानां पटलस्य=समूहस्य, आम्बादेन =
मक्षणैः, चपलिता=चञ्चलाः, चञ्चुवः = चोट्यः, “चञ्चुओटिहमे स्त्रियो”
इत्यमरः, येषां ते च ते पतङ्गाः=पक्षिणः, “पतङ्गो पक्षित्वो च” इत्य-
मरः, तेषां कुलम्=समूहः, तस्याक्रमणेन, अधिकम्=अत्यन्तम्,
विनताः = नम्रभूताः, शाखाः = शिखाः, “शिखा शाखा शिखा सते”
त्यमरः, येषां ते च ते शाखिनः=वृक्षाः, “वृक्षा महीवदः शाखी विटनी
पादपस्तद्वि” त्यमरः, तेषां समूहेन व्याप्तः = आवृतः । सुन्दराः =
शोभनाः, कन्दरा = गुहाः, यस्य सः । “दरी तु कन्दरो वा स्त्री” त्यमरः ।
अपानुशासः, शब्दाङ्कुरो ग.टी च र.तिः ।

ब्रह्म = वेदः, तद्व्यपनार्थं जनमपि ब्रह्म, तद्वर्तमानि ब्रह्मचारी । “ब्रह्म-
चर्यमहिता च” त्यागी तु यममेव विशेषस्य मेयुनन्वागम्यैव ब्रह्मचर्यपदवाच्यता ।
अलीनाम्=प्रमथणान्, पुष्टः = गतिः, “स्वाधिकारः पुष्टपणो” इत्य-

का सर सर ध्वनि से दिशाओं को सुस्वरित करनेवाली, फल खाने
... हो गई थीं बाल पक्षियों के कुदक कुदक कर बैठने से और
... एक एक बाने वाली शाखाओं बाने पेड़ों से व्याप्त, तथा सुन्दर
... वाली एक पेड़ाही (या टेकरी) थी ।)

... हो वह ब्रह्मचारी बालक भीतों को ठटकाकर, पूरा की बलिया

प्रथमो निश्वासः

विरामे]

सायन् सस्यैव सतीर्थोऽपरस्तत्मानवयाः कम्पिका-रेणु-रूपित
इव इयामः, चन्दन-चचित-भालः, कर्पूरगुरु-क्षोद-रुरित-घग्ने-
घाट्ट-दण्डः, गुग्गुलु-पटलेकप्रियत्रिव निद्रा-मन्थराणि कोरक-
निकुरम्बकान्नरान्-मुनानि मिलिन्द-वृन्दानि स्मृतिरिति समुपगम्य
नियारयन् गौरपदुमेयमवादीन्—)

मरः, तन्, अवधूय = निवार्य। पुमुमानां कोरकाः = कलिकाः, “कलिका
कोरकः पुमानि” त्यमरः, तान्। अर्धाचिनोति = संकल्पति। सतीर्थः =
सदाप्यायी। “समाननीये वासी”ति यप्रत्यये “तथै य” इति तादेशः।
“सतीर्थस्त्येकगुरुव” इत्यमरः। तेन समानं ययः = अकथा, यय सः।
सतः, यं विधितव्यं कटुभिर्निरोपणं। इयाम इत्याद्यं निरोपणम्। स्वभावतः
कृष्णवर्णं तमुपेक्षते-कम्पूरिकाया = मृगनाभेः, रेणुभिः = रत्नैः, रूपित
इव = पुरित इव। चन्दनेन = गन्धसारेण, चर्चितम् = लिप्तम्, भालम् =
लबाटम्, यय सः। कर्पूरगुग्गुलु = घनसारस्य, अगुरोः = गुराईस्य,
“अगर” इति हिन्दी, च क्षोदेन = चूर्णेन, पुरितम् = व्याप्तम्, वसोघाट्ट-
दण्डम् = उरःस्थम्बुजद्वयम्, यय सः। गुग्गुलुपटले = सौरभसमूहैः,
निद्रया मन्थराणि = अन्तर्धानि। कोरकाणाम् = कलिकानाम्,
निकुरम्बकाणि = वृन्दानि, “निकुरम्ब कदम्बकम्” इत्यमरः।
तेषाम्, अन्नरात्रे = अन्नन्तरे, मुनानि = घनानि। मिलिन्दानाम् =
भ्रमराणाम्, वृन्दानि = समूहान्। त्रिभिर्द्रव्यमिव = जागरणमिव। अन्व-
यमनुगुण्यत्र द्वावप्यातम्। गुग्गुलुलोत्था द्विरेषाः इयामपदुमरीरानुलि-

तोष्टने लगा, उसका सहपाठी और समकक्ष दूसरा ब्रह्मचारी जो
कम्पूरी की बुकनी से सना हुआ सा सौंदर्य रंग का था, मस्तक पर चन्दन
लगाये था, और दशरथन तथा बाहुओं पर कपूर और अगर की बुकनी
रमाये था—नींद से अलगाये और बरिचों के अन्दर सोये हुए भीरी की
गुग्गुलु का गमक से जगाता हुआ सा, सटपट समीप आकर, उस गौर
काष्ठक की मना करता हुआ बोला—

अलं भो अलम् ! मयैव पूर्वमवचिनानि कृमुमानि, त्वं तु पिरं
रात्रावजागरीरिनि क्षिप्रं नोत्थापितः, गुरुचरणा अत्र तडागतदे
सन्ध्यामुपासते, संस्थापिता मया निखिल्या सामग्री तेषां समीपे ।
यां च सप्रथमकल्पाम्, यावनत्रासेन निज्यर्धं रुदतीन्, परम-
मुन्दरीम्, कलित-मानव-देहामिव सरम्बती सान्द्रयन्, मरन्द-

चन्दन-वनसार-कस्मूरिका-परिमलमाघाय पुष्पेभ्य उट्टीष तच्छरीरनिपतनो-
त्सुकाः सञ्जाता इति स्वामायिकथातांवा नागरणमुखेनापोन्वेष्टवन् ।

अलं भो अलम्, पुष्पाद्यव निरेषति । इतः परं वाक्षित्यनवि-
शेषानपदाय इत्तरु नाम गद्यम् । “अच्छटोरधरं स्वल्पसमानं वृत्तक मतन्”
इति तल्लक्षणात्, एतदेव “अनाविद्धपदं चूर्णम्” इति वामनसूत्रे चूर्णक-
नाम्नाऽभिहितम् । अत्रागरीः, “आयु” पातोर्लुटि विरि रूपम् । सप्रथम-
कल्पाम् = असमाप्तसप्तकाम् । यवनेभ्य आगतो यवमाना पाठ्यं यावनः,
स चामो वासरनेन । यवनवपनशस्त्री रुक्मवमाहित्ये समायाती । आयो
वशिष्ठविश्वामित्रसमाम्ने पेनुस्तनसमुत्पन्नेषु रुद्रः, परश्च सगरसमाम्ने वशिष्ठ-
परित्याजितार्यधर्मेषु नागरणारम्भश्रियेभ्यो त्वक्तमहामहोपाध्यायपदयकाः
शक्तिसम्पदायाचार्याः श्रीपद्मानननकर्करत्नभट्टाचार्याः । तन्मनानुसरणे
भारतममागनेभ्यो जवनशब्दप्रयोग एकोचित इति भाति । कलितः =
धातितः मानयो देहः, यथा सा, ताम्, मानवरूपेणाग्नीर्णा सरम्बती-
मित्रेणुप्रेक्षा । मरन्दन=पुनरस्तेन, मधुराः = मिष्टाः, अपा विरोधणम् ।
“अपि दग्धमिन्द । स्वन्दमानं मग्दम, तत्र नियमि लिङ्गो

धम माई बस । फूल मैने पहने ही तोट रक्ते हैं । तुम रात में देर
तक जागने रहे थे इसीझिये तुम्हें बल्टी नहीं अगाया । गुद जा यहाँ
तालाब के किनारे मन्त्रोपासना कर रहे हैं । मैंने मारी सामग्री उनके
पास पहुँचा दी है । जिस, लगभग ७ वर्ष की अवस्था वाली, यवनों के
भव से निमग्नियाँ भर-भर कर रोने लगी, परम मुन्दरी, मानवशरीर धारण
के आई हुई मरन्दती के समान, कन्या को, दाँतसँभलने, मधुर जञ्

प्रथमो निश्वासः

अपः पाययन्, चन्द्रवर्णहानि भोजयन्, त्वं प्रियामायाः
प्रयमनीयो; मेघमधुना म्बपिनि, वदुमुद्रय च पुनस्तर्धय गौर्दि-
त, कल्पिमान्गनीयान्येनम्याः पितरी गृहं च-)

इति सधृत्य उर्ण निश्वाय यायन् सोऽपि किंद्वास्तुनियेप
पदवर्णमान् पर्यन्तान्गरे निपपात उभयोर्दृष्टिः ।

तस्मिन् पर्यन्ते आसीदेको महान्चन्द्रः । तस्मिन्नेव महामुनि-
रवममाधी तिष्ठति स्म । कदा स समाधिमाप्नोत्ययानिनि सोऽपि

न येति । प्रामाण्य-प्रामाण्य-प्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूज-
यन्तु गुह्यन्तु नन्वा इति पण्डितराजवर्यं प्रवृत्तोऽयं मरन्दच्छब्दः । मरम्=

भ्रमरमरणम्, शनि = छन्दश्चरति मरन्दः भ्रमरचरयनम्, मरन्द इति
स्तुतिरुच्यते मरन्दम् । पाययन्, निवृत्ताच्छत्रे । चन्द्रा = कर्पणा
प्राप्तयित्वाः । "छात्रं चन्द्रमरन्दम्" "चन्द्रमर्दो मूकस्तरयम्"
इति च वैदिक्यन्ती । प्रियामाया = रात्रेः । "रात्रिप्रियामा धनदा
शपे" तद्वरेण म्दत्तम् । अत एव यामग्रयमिति प्रहस्यार्थकं
मन्त्रच्छन्दे । परिमार्गगीयानि = अन्येदर्शयानि । नपुमस्त्वमनपुसत्वेनेत्येक-
वचः ।

यत्प्रमियेय = कथञ्चिन्निष्ठति स्म ।

ममाधी = यित्तृप्तिनिरोधात्त्वके योगे । प्रामाण्य = प्रामाणिता, 'छात्र-
दार, कर्मान्दार', इति हिन्दा, ते च ते, प्रामे मया प्रामाणिताः = प्रामाणिताः,
विनते भीर चन्द्रो के टुकड़े निजते हुए, तुमने शत के तीन पहर रिदा
रिजे से, यह इस समय मो रहा है, जागने पर फिर देखे ही रोयेगी,
इसलिये ठमके माता पिता और पर का पता लगाना चाहिये ।

यह सुन कर गर्म सँत लेकर, ज्यों ही उसने भी कुछ पढ़ना पढ़ा,
त्यों ही अचानक ठन दोनों की निगाह पहाड़ी की चोटी पर पड़ी ।
ठम पर्वत में एक बहुत बड़ी गुफा थी । उसमें एक महामुनि समा
लगाये थे । उन्होंने समाधि कब लगाई थी इसका पता किसी को

यन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च । तं केचिन् कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीपथ्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वमन्ति स्म ।

॥ एवायमधुना शिवराजवसरन् ब्रह्मचारि-चतुर्भ्यामदर्शि ।

“अहो ! प्रबुद्धो मुनिः ! प्रबुद्धो मुनिः ! इत एवाऽऽगच्छति, इत एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयम् सत्कार्योऽयम्” इति तौ सम्भ्रान्तौ बभूवुः ।

अथ समापित-सन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया

तेषां ग्रामाः=समूहाः । भुवनुयास-प्रदर्शनमात्रफलकोऽयम् । सरसे रौद्रारि-रसाभावपति प्रकृते दोषत्वमेतत्स्येति केचित् । तम्=समाधिनिरतम् । कपिल-लोमशजैगीपथ्यमार्कण्डेयाभिरञ्जीविनो महर्षयः । “मारुत इत्यबोधितः” इत्यादि-वर्जितना निपातेनाभिहितत्वात् तेषां द्वितीयान्तता विश्वमन्तिक्रियाकर्मत्वे-ऽपीति बोध्यम् । गरीतृमेवादेकस्यैवानेकपोहलेखादुल्लेखालङ्कारः । अदर्शि =दृष्टः । कर्मणि छुटि रूपम् ।

सत्कार्यः=आदरणीयः । सम्भ्रान्तौ=क्षुभितौ । गुरौः कालात् वन्दराया निवसन् मुनिरकस्माद्गिरायात् इति ह्योत्रेकेण व्याकुलौ बभूवुः । अत एव च तदुक्तिं सामेदता ।

समापिता सन्ध्यावन्दनादिक्रिया येन सः, तथाभूते । आदिना स्वेष्ट-

कर्मा-कर्मो ग्राम-ग्रामान और ग्रामीण उनका पूजन, वन्दन और स्तवन कर आते थे । उन्हें कोई कपिल, कोई लोमश, कोई जैगीपथ्य और कोई मार्कण्डेय समझता था । दोनों ब्रह्मचारियों ने, इस समय, उन्हीं को शिवर से उतरते देखा ।

“अहो ! मुनि जग गये । मुनि जग गये । इसी ओर आ रहे हैं, इसी ओर आ रहे हैं, इनका स्तकार करना चाहिये, इनका स्तकार करना चाहिये” यह कहते हुए वे दोनों भीजना करने लगे ।

तदनन्तर, सन्ध्यावन्दन आदि कृत्य समाप्त कर के गुरु के आ जाने की उनही आज्ञा से गोरे ब्रह्मचारी के, सन्ध्यावन्दन आदि नियुक्त

[अथमो]

निर्दिष्टम-सम्पादनाय प्रयत्ने शीघ्रतया, साधनान् सद्वारेण प्राप्नु-
 ताम् ॥ स्वागत-सामग्रीय, "इह आगत्य मनाध्वनामेव आधम"
 इति सम्पादनाय आगत्य दत्तम् निमित्तेषु, योगिराज आगत्य तसि-
 दिदृशत् दीर्घ आत्मनिष्ठोदय-विमलमोह, उपाधिद्वय ।

तस्मिन् पुरुषात्, "योगिराज इति, आगत इति च" आ-
 कर्षणं कर्णधारणाय सद्वो जनाः परितः स्थिताः । सुषटितं दारो-
 रम्, गान्धी जटाम्, विराजन्त्यङ्गानि, अङ्गप्रतिमं नयनं, मधुरां
 गभीराङ्ग बाधं कर्णध्वजमङ्गिका इव सञ्जातम् ।

देव-पुत्र-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । निदा ये नियमा-सम्पादन-सद्विषय-
 स्ते सम्पादनाय । साधनान्, सद्वारेण-सद्वारेण । स्वागत-
 सामग्रीय-सम्पादन-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । "सर्वं च भावेन भवत्यङ्गम्" ॥ भावा-
 धिवाज नाम । प्रगुणानु-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । मनाध्वनाम्-सम्पादन-
 निर्दिष्टेषु-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । कर्णधारिणोः । बाधोदम्-सद्विषय-
 मित्र-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । "देव" इति हिन्दा । उदयविमलमोह-सद्विषय-
 मित्र-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । आगत-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः ।
 भिन्न-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । सुषटितम्-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः ।
 अङ्गप्रतिमं-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । सञ्जातम्-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः ।

सुषटितम्-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः । अङ्गप्रतिमं-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः ।
 सञ्जातम्-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषय-सद्विषयः ।

कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः । कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः ।
 कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः । कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः ।
 कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः । कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः ।
 कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः । कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः, कर्णधारिणोः ।

तन्का पूजा हो रही थी कि 'योगिराज समाधि से जाग गये हैं
 और यहाँ आये हैं' यह समाचार एक दूसरे से सुनकर, चारों ओर
 लोगों का भीड़ लग गई । उनके सुषटित शरीर, धनी वगभौ, विद्या-

मायनाम्” इत्यादिश्य छात्रेषु विमृष्टेषु, अज्ञानान्न छात्रैर्मतेन म
भीता सवेगमत्युत्थां दीर्घं निश्चयनी, मृगोय व्याघ्राऽऽघाता, म
प्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः, कन्यद्वेष्टा अद्वे निपाय समानीया । वि
न्येषणेनापि च तस्याः सद्चरी सद्चरो वा न प्राप्त । नाश्रय
कलयेव निमित्ताम्, नवनोतेनेय रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्
कोरकामदतीम्, सओर्म रुदनोमयलोक्याऽऽमाभिगवि न पा

क्रन्दनं विचिन्तित—अस्पष्टानि अक्षराणि, वस्मिन्तत् । कम्पमान
निःश्वासाः, वस्मिन्तत् । श्रुत्यन = शिष्यः, कण्ठः, वस्मिन्तत्
अत्यधधानेन = विशेषप्यानेन, मध्यम् = भवणादम्, मन्व भावस्त
तस्मात्, हेतो पञ्चमी । अतिशयेन दूरं दक्षिणम्, तस्य भाषां दक्षिण
अनुमिता = विज्ञाता, दक्षिणता = अनिदुरता यस्य तत् । आदिश्य
आशयः । व्याघ्रेण = घातूलेन, आघाता = आक्रान्ता । उपमालङ्कारः
सवेपथुः = सकम्पा । एवेनाद्वे निपाय कन्यका समानीतेति स्थ
क्रियापदद्वयम् । प्रधानक्रियानिरूपितकर्मत्वाभिधानेऽप्रधानक्रियानिरूपित
कर्मत्वमनभिहितमप्यभिहितवत्यकाशत इति महामाष्ये ध्वनितम्,

प्रधानविषया शक्तिः प्रत्ययेनाभिधीयते ।

यदा गुणे तदा तद्वदनुकाऽपि प्रतीयते ॥

इत्यादिना वाक्यपर्याये स्पष्टकृतञ्च । नवनोतेनेय = नैवद्वर्षानेनेय । “मकखन
इति हिन्दी । मृणालमिव = कमलदण्ड इव, गौरीम् = श्वेताम्, कुतोपमा
कुन्दकोरकाः = माष्यकलिकाः, तेषामग्राणं च दन्ता यस्याः सा ताम्

हे ! क्या बात है ! देख कर पता लगाओ” यह आश देकर, छात्रों को
भेजा और क्षण भर बाद ही एक छात्र, डरी हुई, बल्दी-जल्दी ग
और लम्बी साँसे ले रही, बाप से आक्रान्त हरिणों के समान, आँसुओं से
नहाई हुई और काँपती हुई एक बालिका को गोद में उठाकर लाया
चन्द्रमा की कलाओं से रची गई सी, मकखन से बनाई गई सी, कमल
नाल के समान गोरी और कुन्दकलिका के समान दाँती वाली उस

विपरीत इनके, निबिराजविजय में, भाषा उत्तमोत्तम, ओज-
 मयिनी भी, अर्धपूर्ण भी, मुखोन्मय भी, ययास्यान, ययावमर, उद्दाम
 भी, कोमल भी। नवीरग भी इसमें बहुत औचित्य और दक्षता से
 रक्ते हैं, वीररम, विमला अर्वाचोन सस्कृत-साहित्य में प्रायः अभाव
 ही है, यह इस ग्रन्थ में प्रधान है, शृङ्गार भी है, और सर्वथा
 मार्मिक, मुसलोल, कोमल, प्रोति रूप, कही भी असंगतता आने
 नहीं पाई है; यज्ञों के प्रसंग में रौद्र, भयानक, बीभर्त का, और
 वीर के सम्बन्ध में अद्भुत का, रूप बहुत पर्याप्त मात्रा में दिया
 गया है। राजनीति और चार-चालुई और रणकोशल का भी
 निरूपण बहुत सुन्दर है। सर्वोपरि गुण इसका यह है कि विषय
 ऐतिहासिक, अधिकतर वास्तविक है, कपोल-कल्पित नहीं, और
 रसभक्ति, क्रम-भूमि-भक्ति, प्रजा को राज-भक्ति, राजा को प्रजा-
 भक्ति, दानी को धर्म-भक्ति, और भारतीय-राष्ट्रीय-भाव में भरा है
 विन नास का अर्वाचोन सस्कृत ग्रन्थ में मयवा अभाव है।

मे जान नहीं सकता कि क्या पण्डित मण्डनी में अस्वीकृत
 पूर्ण 'दशद-आष्टक-नद-पूर्ण' भाषा विज्ञान आदि काव्या को इसनी
 मूर्तिमा है और इस सम्बन्ध ग्रन्थ में इसी नहीं तो विमुक्तता है।
 इसका विज्ञान औरक प्रकार ही जाना अच्छा है—

भगवान्दास—

गोदधु मदन-बाणाग्रि ।

अथ "बहुरे ! मा भेषीः, पुत्रि ! त्वां मातुः समोपे प्रापयि-
 दाथ, दुहित्वा । त्वं मा पद, भगवति । भुङ्क्ष्व निद्रिण, पिब
 मधः, त्वं तव भागः, दत्तं पथाविप्यसि तदेव वसिष्ठाय, मा मम
 निदने प्राणाव गताय परधीमागोपय, मा मम ब्रह्मर्षिभ्यो गरीरं
 द्योतयन्त्यावलीढं वापाः" इति मद्रस्यथा बोधनेन कथमपि
 मातुः प्राप्तिर दुष्टं पोटवती । ततश्च मया बोधे उपदेशः,
 "वालिभे ! कथय क्वं पित्रो ? कथनेन मित्राभ्यसमाने समापता ?
 किं ते वदस्व ? कथमशोको ? किं वाग्दत्त ? किं कुर्म ?" इति

छा तम् । "नमोऽस्तुतेऽन्यथादेवमेव" इति द्वावेरी, उमिदन्त्याद्
 हीत् । मधोभय-आत्मभयम् ।

मा भेषी, "वालिभ्यः" "अ मादशोम" इत्यग्निदेवा । मा
 वद, निवर्थाप्यते मातुः न तु मातुः, अत एव बोध । प्राणान्-भयम्
 "दुष्टि तु-दशवा प्राण" इत्यमरः । भागोपयः, "सोऽरे कर्तुं" ति कर्त् ।
 द्योतयन्त्या-द्योतयिता, अवलीढम्-व्यसम् । बोधे-अहम् । दुष्टं-पथा-

वालिभ्यो बो ध्यातुम् सोऽपि सोऽपि देव, एव बोध भो भवने भगिन् न
 लोक संके ।)

उक्तं वद "देवी इति मत्त, एषा तुहं मां के वास वदुवा एते,
 वेद भयभीत मत्त वती, गता विद्रिष्टा कुल लाभो, दूष रिषो, ये दुष्टारे
 भाई ई, जो कुछ दुष्ट करोवा हम वहा करंगे, यो-येकर प्राणी को संदेह
 में मत्त दाको, इस क्रमसे यदर को द्योतयिता को कवरी से मत्त दुष्ट-
 छा-भो" इस प्रकार द्वावेरी तथ से समझाने-बुझाने पर किसी प्रकार
 आशय हो उस वालिभ्य ने कुछ दूष रिषा । तदनन्तर, मैने उसे गोद में
 लेकर पूजा, 'बेटी' बतलायो तुम्हारे माता-पिता कहीं रहते हैं । तुम इस
 आशय के किनारे कैसे आ गई । तुम्हें क्या पत्र है । तुम रोता क्यों हो ।
 क्या पारदा हो । हम तुम्हारे लिए क्या करें । किसी कथा होने के कारण

पुष्टा मुग्धतया अपरिक्लिप्त-वाक्पाटवा, भवेन विशिधिलयचन
विन्यासा, मृजया अतिमन्दमृगा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेय
कथं कथमपि अवोधयद्मान यद्-एषा अस्मिन्नेदीयस्येव मामे वस्तु
कस्यापि ब्राह्मणस्य ननयाऽस्मि । एषां च सुन्दरोमाकलय्य कोऽपि
यवन-ननयो नदीनटान्मानुहंमादाकिलय कन्दली नान्वाऽपसमार ।
(ततः काञ्चिद्धानमतिक्लम्य यावदासिधेनुकां मन्ददयं विभीषिक
याऽग्या कन्दन-कोन्डाहलं जमायितुमिवेष; तावद्वृक्षमाकाङ्क्षी
काल-कम्बल इव भल्लूको घमान्वादुपाजगाम । दृष्ट्वेव यवन-नन

वालस्वभावादहतया । अपरिक्लिप्तम्=अविनातम्, वाक्पाटवम्=भाषण
चातुर्यं यथा मा । भवेन=भंत्वा । हेतोर्गुर्वाया । विशिधिलः=अस्तम्यस्तः,
यचनविन्यास=भाषणम्, यस्याः सा । चकितचकितेय=अतिभीतेव ।
नेदीर्यासि=अतिनिकटे । “अन्तिकवाटयोर्नेदसाया” विलम्बितकल
नेशदेयः । आकलय्य=निधित्व । इयं न ब्राह्मणतनया किन्तु क्षत्रि-
तनया ज्ञातु च गता न मात्रा सह, अरि तु दास्या, पुरोहितं निवर्त दासो च
मातर मेन इत्यप्रेतनक्षया स्वर्गभविष्यति । आसिधेनुकाम्=धुरिकान् ।
“धुरिका चासिधेनुके” त्वमरः । विभीषिक्या=मयप्रदर्शनेन । काल-
आसी कम्बल इति कर्मधारय । कृष्णवाची कालशब्दः । कालस्य=यम-
स्य कम्बल इवेति वा । शाल्मलिकर्णके “सैमर” इति निगद्यते ।

भाषणचातुरी से एकदम असरचित, भय के मारे अस्त-व्यस्त शब्दों में बोझने
वाली, लज्जा से धीमे स्वर और शोक से रूँधे गले वाली, अत्यन्त चकित
हुई सा। इस बालिका ने बड़ी कठिनाई से हमें बताया कि यह सर्माप के हाँ
गाँव में रहनेवाली किसी ब्राह्मण की कन्या है । सुन्दर देखकर, कोई
सुसलमान का लड़का, नदी के किनारे से, माँ के हाथ से छीनकर,
रोती बिलपती हुई इसको ले भागा । कुछ दूर चारकर उसने, धुरा
दिखा कर, डरा कर, इसको धुर करना चाहा, इतने में ही एकाएक काले
कम्बल सा एक रीठ बंगल के किनारे से उधर आ निकला । उसे देखते

ने]

उसी तर्पण त्यक्त्वा अन्यकामिना शास्त्रनखितकमेकमारोह ।
प्रतनया चैवं पलाश-पट्टाशि-भेष्यां प्रविश्य पुगाक्षरन्यायेन इत
य समायाता यापद् भवेन पुना रोदिनुमारन्धवती; तावदस्मच्छा-
यैनाऽऽनीतेति ।

तदाकर्ण्य पोषमाच्छाज्जलित इव योगो प्रोवाच—“विक्रमराजोऽ-
पि कथमेव पातकमयो दुराचाराणामुपद्रवः ?” ततः स उवाच—
महात्मन् । काधुना विक्रमराज्यम् ? पोरतषक्रमस्य तु भारत-
मुखं विरहप्य गतस्य यपांशा सत्तदश शतकानि व्यतीतानि ।
काधुना मन्दिरे मन्दिरे जयत्रय-ध्वनिः ? क सम्प्रति तीर्थे तीर्थे

पलाशाः = किणुकाः, ते च ते पलाशिनः = तरावः, तेषां भेष्याम् = पट्टी
पलाशानि यपाणि वा, “पत्रं पलाश उदनम्” इत्यमरः । पुगाक्षरन्यायेन,
तद्वेष्यैः कृमिभिः काष्ठानुवेगे क्रियमाणे यथाऽऽक्रमादधर्मिन प्रतीयते,
इथा यथाविच्छिन्न-कार्य-विहितमेत्यमभिधीयते । पुना रोदिनुम्, “रो-
दि” इति लोपे “दूलांवे पूर्वस्य दीपाज्ज” इति दीर्घः ।
विरहप्य = परित्यज्य । सत्तदशशतकानि, शिवपञ्चमयवचना-
यैमिदम् । शिवपञ्चमालिकपवनदुष्टाचारान्वर्णयति—कवेत्यादि । मठे मठे =

तो यह मुसलमान का मठका, इस लड़की को वही छोड़, एक सेमर के
दि पर चढ़ गया और यह ब्राह्मण-बालिका पलाश इधों के छर-
मुट में प्रवेश कर पुगाक्षर न्याय से इधर आकर मारे भय के पुनः रोने
लगी, इसी बीच हमारा छात्र इसे यहाँ ले आया ।

यह मुनकर प्रोवाचि की कथनों से प्रदीप्त हुए से योगिराज बोले—
“विक्रमादित्य के राज्य में दुष्टचारियों का यह पापमय उपद्रव कैसा ?”
उदनन्तर ब्रह्मचारी के मुख ने कहा—“महात्मा जी, अब विक्रम का
राज्य नहीं रहा । वीर विक्रमादित्य को तो भारतभूमि को छोड़कर गये
सुप्रह सो वर्ष व्यतीत हो गये । अब मन्दिरों में जय-जयकार कहाँ । त्यों

घण्टानादः ? काशापि मठे मठे वेदघोषः ? अथ हि वेदा वि-
 योथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पु-
 णानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा
 भर्ज्यन्ते; “कचिन्मान्दिराणि भिद्यन्ते, कचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते,
 कचिद्वारा अपह्रियन्ते, कचिद्वनानि लुण्ठयन्ते, कचिदार्त्तनादा
 कचिद् रुधिरधाराः, कचिदग्निदाहः, कचिद् गृहनिपातः” इत्यादि
 भ्रूयतेऽवलोक्यते च परितः ।

प्रतिष्ठाप्राप्तयन् । “मठरञ्जनादिनिरूप” इत्यमरः । वेदा=वेदपुस्तकानि ।
 विक्षिप्य=विगच्छ, योथीषु=पशुषु, उद्धूय=उत्तोत्प । धूम ध-
 ध्वजो येषां ते तेषु=बद्धिषु । ध्मायन्ते=स्थाप्यन्ते । पुराणानि=
 ब्रह्मवैवर्त्तानि । पिष्ट्वा=चूनाकृत्य । भाष्याणि=व्याख्याख्यानानि
 यास्यावनादिनिर्मितानि । भाष्येषु=भर्जनपात्रेषु “क्रांवेज्ज्वरीषं भा-
 ने” इत्यमरः । “भाह” इति हिन्दी । दाराः=भाषाः । इ विदार-
 इत्यस्माणिब्रज्वात् “दारवाती वसन्ति नि दुहन्ते” इति वम्, “दारवा-
 वानादानीं वदन्तम्” ।

कोडा हाथ तथा दारा नव एते वयाक्रमम् ।
 कोडे हारे च दारेषु शब्दाः प्रोक्ता मर्मभिनिः ॥

इति हेमचन्द्रानुसारेण दान्तोऽन्वयम् । यथा च “दार नव” इति
 पदं दान्तं तथा यच्चन्तस्वेकवचनादिभ्यश्चि प्रयोगस्तद्विशोऽन्वयार्थते । कापुने
 दान्तस्य पठित इत्यन्तं समता नाम गुणो दण्डिमते । यस्मादस्तु सर्वसम्मत-
 दण्डिदन्तः ।

मैं वष्य निनाद कहाँ ? मठा में वेदध्वनि कहाँ ? भाष जो वेद का पुस्तक
 घड़-घाड़ कर सदही पर बिछोयी जाता है, धर्मशास्त्र के ग्रन्थ भस्म-भस्म
 कर भाग में छोड़ के जाने हैं, पुराण की पुराहण पद कर पानी में पक
 जाता है और नाथग्रन्थ पीड़ मगोड़ कर भाड़ी में छोड़ के जाते हैं ।
 तन्दिर लड़ जाने हैं, कहाँ दुखही गृह चढ़े जाने हैं, कहाँ छियां का भ-
 दान किता जाय है और कहाँ पनमण्डल गूदा जाता है । कहाँ कहाँ

प्रथमो निधायः

कण्यं दुःखितप्रकृतम् योगिराजुवाच—“कथमेतत् ?
 पर्वतीयान्छकान्विनिर्जित्य महता जयपोषेय स्वराजधानी-
 श्रीमानादित्य-पदलाञ्छनो वीरविक्रमः । अद्यापि तद्विजय-
 मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्रपूयन्ते, अधुनापि तेषां पटह-
 गदीनां निनादः कण्ठाशकुली पूरयतीव, तत्कथमस्य वर्षाणां
 श-शतकानि ज्यतीवानि” इति ?
 ततः सर्वेषु स्वप्नेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्यं-
 तम्—

“भागधन ! पञ्च-सिद्धासनैर्निरुद्ध-निरयासैः प्रचोदितकुण्डलिनी-
 पर्वतीयान्—पर्वतप्रान्तस्थान् । स्वराजधानीम्—उज्जयिनीम् । आदित्य-
 पदलाञ्छनः = आदित्यसद्विभूतिरतः । तस्मैवाचो लाञ्छनशब्दः—“कलङ्काङ्की
 लाञ्छनं च चिह्नं यस्य च सङ्गच्छति” इत्यमरः । समुद्रपूयन्ते = कथमाना
 वेष्टयन्ते । पटह-गोमुखादीनाम् = वायव्यदिशायां । पटह—नगर ।
 गोमुख = तुरही इति हिन्दी । भाविशब्दद्वारेणास्य प्रत्याधायमानत्वात् ।
 भवादृशैः = योगनिरतैः, कालस्य वेगः = गतिर्न जायत इत्यनया ।
 भवादृशान् विधिनति—पट्टसिद्धासनम्—योगशास्त्रेण आसननिरतौ वैलौ ।

कन्दन है तो कही कथिर को पाय, कही अग्निकाण्ड है और कही पर-
 ज्योतिष । चारों ओर यही मुनाई देता है और यही दिलाई देता है ।
 यह मुनकर विश्व और विस्मित हुए योगियन्त्र ने कहा—“यह कैसे ?
 श्रीमान्, आदित्यसद्विभूतिरतः कौरव विक्रम अपनी कल ही पर्वत प्रान्त
 निवासी राजा को घातकर, महान् जय-जयकार के साथ अपनी राजधानी
 उज्जयिनी आये है । आज भी उनकी विजयताशार्द घंटे नेत्रों के सामने
 फहरा ही रहा है, इस समय भी उनके नगादे, तुरही आदि शस्त्रों की
 ध्वनि मेरे कर्णविकरी को पूर्ण हो कर रहा है, फिर आज सपने को कर्ण
 से उठ गये ?”
 योगियन्त्र के यह पवन मुनकर उसके लज्ज और विस्मित हो जाने
 पर, ब्रह्मचारी के मुख ने प्रणाम कर कहा—“दयाकर ! विद्वान् राजा

कैर्ध्वजित-दशेन्द्रियैरनाहत-नाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संतुष्टं
चन्द्रमण्डलं भित्त्वा, तेजःपुञ्जमधिगम्य, सहस्रदलकमलन्यास
प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्द-

निरुद्धाः = भक्तनिर्दिष्टाः, निश्वासाः = प्राणा वैस्तेः । प्रयोधिताः =
उद्योतिता, कुण्डलिनी = पराशक्त्यभिधेया नाडांरुपा प्रधानमहिष्ता-
नम्, वैस्तेः । चिज्जितानि = वशःकृतानि, दशेन्द्रियानि वैस्तेः । क-
राणि-नाद-वायुस्थानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, चतुः-भोज-माण-रसन-त्वगाकर्मानि
पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि । अनाहतध्वासी नादः तस्य तन्तुं = तन्तुवत्त्वां हृद्य-
वस्थापनिकाम् । मुमुक्षामध्ये स्थितं तुरीयं पञ्चमनाहतनाम्ना योग्यान्वे-
ष्टनिश्चयं, तदुच्यते नादोऽनाहतनादः । आज्ञाचक्रम् = ध्रुवोर्म्ये दिश-
न्नामकं चक्रम् । मृत्युञ्जय = ध्यानावस्थामनं कृत्वा । चन्द्रमण्डलम् = तद-
वस्थाम् । योऽहमहममकं चक्रम् । तेजःपुञ्जम् = सोमचन्द्रवर्तिनं महाप्रभा-
यम् । सहस्रदलकमलस्य = ब्रह्मरन्ध्रनिनः सहस्राक्षकस्य । परमात्मा-
नम् = परं ब्रह्म । तत्रैव = ब्रह्मणि । रममाणैः = विहरन्ति । अनिर्वचन-क-
मानन्दानुभूतिरिति वाक् । मृत्युञ्जयैः = स्वर्गद्वाराकाशवृत्तिभिः,
मानन्दमाप्स्यन्त्यैः = मानन्दमये ब्रह्मणि क.न. गच्छन्त्यैः । एतु योऽ-
हमनामनिश्चयानां छन्दानामुपशान्तं तच्छान्तिनिष्ठं चोपासनकं नि-

पथभों निधानः

मन्त्रार्चनादिभिर्भक्त्या ह्येतैः कृत्यैः । तस्मिन् समये
ना ये पुराणा अस्तोत्राणि तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुराणो जायते-
यत्ने । अतः न तानि श्रोतामि नदीनाम्, न म मन्त्रा नगराणाम्,
मा आहूतिर्निगीदाम्, न मा मन्त्रा विपिनानाम् । किमधिकं
पथभो भारतवर्षमाप्नुता भव्यादस्यैव सम्पत्तमस्मिन् ॥

इदमावश्यं विज्ञानिस्तैश्च परितोऽवलोक्य च योगी जगद्-
"मायं न तस्मिन् मया समच-वेत्तः । योधिष्ठिरे समये कलित-
समाधिरहं वैदम समये इदमाम् । पुनश्च वैदम समये समाधिमा-
कृत्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्पितोऽस्मि । अहं पुनर्गत्या

स्वगत त-इतोऽपदुर्लभमिति—तत्र, भवत्यगदस्य योगशास्त्रोक्त-
मिरे भुक्त्याभावक-कारेणैव अनुतिष्ठित-माय । अत एव "न सा
दा न तच्छास्त्रि" त्यादिना सादितस्य व्युत्पत्तिरिति तदर्थस्य सर्वमपत्यं
विधान । इदमप्यथा "इतिदिवा प्रकृतेः पूषति" त्यादीनां "वागवावि
तद-वावि" त्यादीनाञ्च न एतोऽपदुर्लभमिति नमस्तदर्थेन ।
पञ्चाशत्तम = पञ्चाशत्तमपूरवः । वैगुणिक-गव-पूषकोऽपि ।
योधिष्ठिरे = पुतिष्ठिराव समयो योधिष्ठिरास्मिन् ।

महात्मा भी को समय का बेग प्रवृत्त नहीं होता । उस समय आपने जिन
बाँगी को देखा होगा, उनको पक्षियों की ही का पुरान भी भाव नहीं
दिखाया देता । आत्र नदियों के वे खेत नहीं रहे, नगरी की घर स्थिति
नहीं रहा, पर्वतों का घर आकार नहीं रहा और पहाड़ों की घर गहनता
नहीं रहा । अधिक क्या कहें भारतवर्ष इस समय दूधप सा ही हो
गया है ।

यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुए वे, चारों ओर देखाकर, योगिराज
बोले—“सचमुच मुझे समय के बेग की प्रतीति नहीं हुई । योधिष्ठिर के
समय में समाधि लगा कर मैं विदम के समय में जागा था, और पुनः

समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत्सङ्क्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति”—

(तत्संश्रुत्य भारतवर्षीय-दशा-संस्मरण-संजात-शोको हृदयस्थ-प्रसाद-सम्भारोद्दिगरण-श्रमेणैवातिमन्यरेण स्वरेण “मा स्म धर्मध्वंसन-द्योपणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय” इति कण्ठं रुन्धतो वाष्पात् विगणप्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निम्बस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्यां परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत—)

(“भगवन् ! दम्भोलिघटितैर्य रसना, या दारुण-दानबोदन्तो

भारतवर्ष-सम्बन्धिन्या दद्यायाः संस्मरणेन सज्जातः शोको यस्य ॥
हृदयस्थो यः प्रसाद = प्रसन्नता, तस्य सम्भारः = अतिशय-
तस्यांद्दिगरणे = वमने यः श्रमः, तेनेवेत्युत्प्रेक्षा । धर्मस्य = भुतिप्रतिपाद्य-
मद् ध्वंसनम् = उन्मूलनम्, तस्य द्योपणैः = कथनैः ।

दम्भोलिघटिता = वज्रमयो । “दम्भोलिघनिर्द्रपोरि” त्यम-
दारुणानाम् = भयानकानाम्, दानवानाम् = श्लेष्मानाम्,
उदन्तस्य = वृत्तान्तस्य । “वार्तां प्रवृत्तिर्दृष्टान्त उदन्तः स्यादि” त्यम-

विक्रम के समय में समाधिस्थ होकर इस अन्याचारमय समय में जागा हूँ
मैं फिर जाकर समाधि हो समाजेंगा, किन्तु तब तक संछेर में बताइए
कि भारतवर्ष की क्या दशा है ?

‘यह सुनकर मातार्यु को दुर्दशा के स्मरण से ब्रह्मचारी के गुरु की
शोक उमड़ आया । मानो हृदयस्थित ह्वाँतिरेक के प्रकाशन करने के धर्म
से भीम पड़ गये स्वर से, ‘धर्मनिर्वस की कथाओं से योगिजन का
धैर्य मन दिग्भ्रमों’ यह कहने हुए से सदा कँधने वाल अंगुओं की पर-
बाह न कर, नेत्र पीड़कर, गरम साँस लकर, कातर नेत्रों से पारी ओर
देनकर, ब्रह्मचारी के गुरु ने कहना प्रारम्भ किया—

१ “भगवन् ! मेले यह आँध धत्र से बनी है जो भीषण भेद्यो के

प्रथमो निभासः

जेनं शीघ्रंते, कोहसारमयं हृदयम्, यत् संस्मृत्य यावदान्तर-
द्वारात् दुराचारान् दत्तथा न भिद्यते, अस्मसाच्च न भवति ।
नामान्, वेदेषां च जीवाम्, अस्मिन्, विपरामः, अस्मिन्
इत्येवमपि अभिमन्यामहे—”

उपक्रमममुमाहृत्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राक्ष-
कालिमिव पद्मम्, निपतद्गतिविन्दुमो नयने, अस्मिन्-रोम-
कञ्जुं हरीम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानञ्च स्वरम्, भवा-
गच्छन् “मकलानयमयः, सकल-वञ्चनामयः, सकलपापमयः,
मकलोपद्रवमयमयं वृत्तान्तः”—इति, “अत एव तत्तमण्यमात्रेणापि

उद्गोष्णे = हयने, कोहसारमयम् = भयोनिर्भयम् । सकलं पणः
पारसदत्तः, तान् । एवदन्त्यादिपारसदत्तस्य पणिसतः । पारस-
वान् । शिरोध्वनिभन्ताहोषद्विजः । नास्मन्नीकन भंजनम्, अत्रि
मन्त्रेव भवनविधि एवम् जीवाम् हन्तामिषाव भुक्षिम् इति ।
विमनायमानम् = दुर्मनायमानम् । हरिद्राक्षसारम्, तद्रूपेण =
द्रव्येन, कालिमिव = जौतमिव । उल्लेखः । निपतन्तु = लब्धः,
कारिणिन्दयः = मभुक्ष्य पाशो ते । अस्मिन्-रोम-कञ्जम् = सरोपा-

वृत्तान्त के वर्णन से यह नहीं जाता, मेरा हृदय लोहे का बना हुआ है,
और मयनों के हजारों दुष्टाचारों का स्पर्श कर टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता
और बलकर राख नहीं हो जाता । बिकार है हम लोगों को, जो भाव भी
घटे है, भाँस छेदे है, हथर-उपर पसते हैं और अपने को भावों का
बन्धन मानते हैं ।”)

इस उपोद्घात को सुनकर और ब्रह्मचारी के गुरु के हठ से होने
हुए वे (पंडित) उदास चेहरे, और चरमाते नेत्रों, रोमाञ्चित हरी, पक-
पटे ओठ और कलसदाते स्वर से, योगिपुत्र समस्त गये कि यह साथ
सबको, ब्रह्मनामों तथा पाप और उपद्रव की घटनाओं से भय

वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण, विद्याया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये, शनैः शनैः पारस्परिक-विरोध-विशिथिलीकृत-स्नेहवन्धनेषु राजसु, भामिनी-भ्रमङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूत्वैभ्येषु भटेषु, स्वार्थ-चिन्ता-सन्तान-चित्तानैकतानेष्वमात्यवर्गेषु, प्रजं सामाज्यप्रियेषु प्रभुषु, “इन्द्र-स्वधं धरुणस्त्यं कुबेरस्त्वम्” इति वर्णनाभाप्रसक्तेषु युधजनेषु, कथ्यत गजिनी-स्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्रायिशद् भारते वर्पे । स च प्रजा चितुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिद्य, पर-

सनाथितवति = सनाथ कृतवति । यैरादिना साकं सनाथाकरणमिति सहोक्तिरतद्धारः । सौदुमार्यं नामगुणः, अमङ्गलस्य विरुद्धमनभिधानात् । तत्र भवति = भण्डे । “तत्र च भावेने”ति सतनी । पारस्परिकविरोधेन विशिथिलीकृतानि = विशिथिलतामापादितानि स्नेहवन्धनानि यैस्तेषु । भामिनीनाम् = भामिनीनाम्, भ्रमङ्गाः = सकयशेधनानि, भूरिभावाः = हायावाभेदाः, तेषां प्रभावेण पराभूतानि = विरक्तानि, वैभयानि = धनानि येषां तादृशेषु । गजिनी = “गजनी” इति लोके प्रसिद्धा । मन्कृतशब्दापरभ्रंशभूता एव सर्वे भाषाशब्दा इत्यभिप्रायेण प्रायः सायंक-संस्कृतशब्दानामेव नामादिध्वनि प्रयोगः । महामदः = महमूद इति लोके प्रसिद्ध तन्नाम, देवनाम्ना “महमूद दण्डनी” इति दृष्टेषु समुज्जितवत् ।

प्रमप्रता, प्रताप, तेज, बल, पराक्रम, शक्ति, शोभा, सुख, धर्म और विद्या के साथ वीर विक्रमादित्य के परलोक चले जाने पर, राजाओं के पारस्परिक स्नेहवन्धन के आपसी समझौते के कारण दोले पड़ जाने पर, वीरों के, भामिनीयों के कदमों और हाव-भाव के प्रभाव से आकर सारी मम्यति दरबाद कर चुकने पर, अमात्यों के स्वार्थचिन्तामात्रदरायण हो जाने पर, गजानों के प्रशंसामात्र प्रिय हो जाने पर तथा विद्वानों के ‘अन इन्द्र है, आन वरुण है, आन कुबेर है’ कहकर चादुकारिता करके प्रभुओं को प्रसन्न करने में लग जाने पर, श्विनी स्थान निवासी, किसी मरन्द नद के यवन ने सेना के साथ भागवत्पर्व में प्रवेश किया । यह प्रथा

प्रथमो निष्ठासः

विषये]

इदानीं जगतां दासीकृत्य, इतः स एतेषु स्वान्यारोप्य स्वदेशम-
 नीयन् । एवं स हानागवादः योन पुन्येन द्वादशवारमागत्य भारत-
 मलुङ्गठम् । तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे परदा गुर्जरदेश-बूढायिनं
 सोमनाथनोर्धमपि धूलीयकार । मद्य तु सत्तोर्धस्य नामापि धनापि
 न स्मर्यते; परं तत्प्रमये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमामीम् । तत्र
 हि महार्ह-वैदूर्य-वज्रराग-माणिक्य-मुक्ताफलादि-जटितानि कपा-
 टानि, लम्भान, गृहायमह्वोः, भित्तोः, पलभीः, विट्टानि च
 निर्मम्य, रत्नान्धयमादाय, दानद्वय-मणमुत्तम-गृहलावलम्बिनी
 चञ्चलाकचक-परिनीकुतायलोचक-लोचन-निषया मदापण्टी

अलुङ्गठम् = लुण्ठितवान् । गुर्जरदेशबूढायिनम् = गुर्जरदेशभूषण-
 स्यम् । धूलीयकार = नाशयामास । जटितानि, 'जट, सट सट' इत्यस्य
 प्रयोगः । "बड़े दुबे" इति हिन्दी । गृहायमह्वोः = देहलीः । भित्तोः =
 कुम्हानि । पलभीः = गोपानर्मः । "गोपानसी तु बलभिष्ठादने बरदा-
 हणी" इत्यमरः । "छात्रा" इति हिन्दी "धरना" इति वा । मणशब्दो लोके
 "मन" इति स्थातः । चञ्चला = समुच्छलता, चाकपक्येन, चकिनी-
 कृताः = निरमेरुकृताः, अवलोचकलोचनानाम् = द्रष्टृजननयनानाम्,

को लूट कर, मन्दिरो को ध्वस्त कर, मूर्तियों को तोड़ कर, रीकड़ों को गो-
 को दास बना कर, रीकड़ों ऊँटों पर रख लाद कर, अपने देश को ले गया ।
 इस प्रकार, स्याद मिल जाने के कारण बार-बार आकर उसने बार-बार
 भारतवर्ष को लूटा । अपने इन्हीं हमलों में उसने एक बार गुजरात के
 आभूषणरूप सोमनाथ तीर्थ को भी धूल में मिला दिया । आज तो उस
 लोकोत्तर था । उसमें बहुमूल्य वैदूर्य (मूँगा), वज्रराग, हरे और मोठा
 चक्रे सिंहासों, लम्भों, देहलियों, दावारों, छत्रों और चपूतों के दरनों को
 छानकर, रखवायि लेकर, दो सी मन सोने की चञ्चल में लटकने वाली
 और देहीनमान चमकवाह से दरवाँ के मेजों को चमकृत कर दे

प्रथमो निश्चासः

रामे]

दया मूर्तिमत्तुष्टम् । गदापानसमकालमेव चानेकावुदपद्ममुद्रामू-
न्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन् । स च दग्ध-
मुखः तानि रत्नानि मूर्तिरगण्डानि च क्रमेण कष्टेष्वाग्रेय सिन्धुनद-
मुसीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत् ।

अथ बालकमेव सत्राजीन्युत्तरमहस्यनमे (१८७) वैकमादे-
सशोरं सक्पञ्च प्राणांत्यक्तपति महामदे, गोरदेशयासी कश्चिन्
शहाबुद्दीन-नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्म-
राजलोकाध्यन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पनुमारं मार्गय्या,
सहृदिपारंमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय पनुराङ्गियाऽनीबिन्या

मत्तुष्टम् = अभिनत्, भेदितवानित्यर्थः । उच्छलितानि = उत्पतितानि ।
दग्धमुखः = दुष्टः । "मुद्राश्च" इति हिन्दी । क्रमेणैः = उद्गाः, "बद्धे
क्रमेण क्रममहात्मा" इत्यमरः । विजयध्वजिनीम् = विजयध्वजवर्तम् ।
"न कर्मधारयद्" इति निषेधस्यासार्धविकल्पमुच्यम् ।

गोरदेशः = सिन्धुनद्यः पश्चिमदिशि पवनप्रधानो देशविशेषः ।
शहाबुद्दीनमपि देशनाम्ना "शहाबुद्दीन गोरी" ति वदयन्ति । अध्वनीनम् =
पान्यम् । पनुराङ्गिः समेता चतुराङ्गिणी । "इत्युधरपराशतं सेनाञ्च
स्वाधनुष्टपि" इत्यमरः । अनीबिन्या = सेनया । शीतलशोणि-

महमूद गजनी ने मीरग गदा से मूर्ति तोड़ डाला । गदा गिरते ही अनेक
अरब पद्म मूल्य के रत्न मूर्ति से उछल कर ऊपर-ऊपर बिखर गये । वह
मुद्राश्च उन रत्नों और मूर्तिलगनों को ऊँचे का पीठ पर लार कर, सिन्धु
नद को पार कर अपने विजयध्वजवाली राजधानी गजनी में प्रविष्ट हुआ ।

तदनन्तर, समय के पेर से वि० सं० १०८७ में महमूद की छोड़
अंर क्छेदपूर्वक मृत्यु हो जाने पर, गोरदेश निवासी शहाबुद्दीन नामक
किसी पवन ने, पहले गजनी देश पर आक्रमण कर के, महमूद के बराबरी
को यमलोक के पय का पयिक बना कर, सही प्रजा को पद्मों की मंठ
मारकर, प्रजा के हरि से गंती मिट्टी से गोर देश में अनेक मरलों का

प्रसन्न संसृष्ट, महादेवमूर्तावपि गदामुदन् तुलन् ।

अथ [वीर !] गृहीतमग्निलं चित्तम्, पराजिता आर्य्यसेना,
यन्दीकृता वयम्, सञ्चिन्तममलं यजः; इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोध-
भेदमनाभाइय, मात्स्य, छिन्धि, भिन्धि, पानय, मज्जय, खण्डय,
कर्तय, शूलय; किन्तु त्यजे मामक्रिष्टिकरी जडां महादेव-प्रतिमाम् !
यद्येव न स्वीकरोपि तद् गृहाणाममत्तोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्,
यावत्तव, भिना भगवन्मूर्तिस्त्राप्तीः” इति साघेटकमयस्सु गदासु पतसु
षिदुण्डसु प्रतमसु च पूजकयोगुः; “नाहं मूर्तायिक्रीणामि; किन्तु
भिन्नप्रैहान् संगम्य जननाया हाहाकार-कलकलमाश्रयेयन् घोर-

निषय. = समूहो यथा ताम् । उदन् तुलन् = उदतिष्ठित् । प्रदतश-
मिति वाक् । उलूखंकानुन्मानार्थं शब्दवादिशानुक्तातोः कर्त्तरि लुटि ।
“भक्तिश्चिकरी जडामि” इति तत्र यशोपमायाय कप्रीतये वा, म-
यन्मृग-वेति बोध्यम् । स्वाधी, मादयोगे लुट्, भग एव
ना । स्वाध. लृप्ति इत्यपि श्वे । जननायाः = जनममूरय ।

महादेव की चारदीवनी इतिया कर, महादेव की मूर्ति पर भी गदा उठारें ।

इसके बाद पुकारियों के “वर । तुमने माया पन ले लिये, दिन्दुभी
का नेनाभी को हरा दिया, हम चागी को कटा बना लिया, निर्मल यश
का लज्ज का लिया, यदि इनके पर भी तुम्हाग क्रोध शान्त न हुआ हो
तो हमने वही, मर्गे, धर कावो, काट कावो, पहाड़ से नीचे गिरा दो, मगुद्र
मे हुआ दो, दुधक दुधक कर कावो, कनर कावो, कला कावो, लेकिन हम
ने कभी वह महादेव मूर्ति को छोड़ दो । यदि हम तरह भी बचाव न हो तो
हमने दो बाँक काटेदुआई और ले का, लजा कावो, इस महादेवमूर्ति को
मद हुआ ।” यह वह का का वर दिन्दु वरने वा, रोने गिरगिराने,
देते रहने, मूर्ति पर काटने और प्रणय कावने वा, “मैं मूर्ति देखना नहीं
किन्तु होना हूँ” की माया कर, कनरा को हाहाकार और के बीच उठ

प्रथमो निघासः

मे]

त भवते । महाराष्ट्रदेशरम्भम्, यवन-शोणित-विपासाऽऽहुल-
 पाणः, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-
 देदीप्यमान-दोदण्डः, मुहुटमणिमहाराष्ट्रणाम्, पारावाट परमो साहा-
 निधिर्नातीनाम्, कुलभवनं कौशल्यानाम्, पारावाट परमो साहा-
 नाम्, कश्चन प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्माऽऽमद-मद-मदिलः, शिव
 इव धृतायतारः शिवयोरध्वानिन् पुण्यनगराग्नेदीयस्येव सिद्धुर्गे
 ससेनो निवसति । विजयपुराधोभरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धं वैरम् ।
 “कार्यं वा साधयेवं देहं वा पातयेयम्” इत्यस्य सारागर्भां महती
 “छारस्ता छा” इति प्रसिद्धं नाम । एतच्छब्दस्य नित्यस्त्रीवत्त्वम् । यवनानाम्
 = मोहमदानां, शोणितस्य विपासायामाहुलः कुलाग्नौ पत्य सः ।
 वीरस्य भाषो वीरता = वीरता, शैव सीमन्तिनी = कवना, तस्याः
 सीमन्ते = वेष्टने, सुन्दरं सान्द्रं = वन, यस्मिन्दूरदानं = नागवेश-
 चर्चनं, तेन देदीप्यमानो दोदण्डः = पादुदण्डो यस्य सः । भुवनुग्रामः ।
 स्वधर्माय = सनातनधर्मस्य, य आपदमद = ददाति पावनम्, एव
 मदिलः = ददतः । शिव एवेष्टुग्रेहा । शिववीरः = “शिववीर” इति
 विख्यातः । पुण्यनगरान्-“पूना” इति कथाशब्दः । नेदीयसि = अति

का सना-सम्बन्धी छारस्ता छौ दक्षिण देश का घामक बना कर वहाँ भेजा
 जा रहा है । महाराष्ट्र देश के राज, यवनों के शत्रु की व्याप्ती लक्ष्य
 बाटे, छारस्ता रूपी नायिका की माँ में सुन्दर बालका सिन्दूर लगाने से
 देदीप्यमान भुजाओं बाटे, मराठी के मुहुटमणि, योद्धाओं के आभूषण
 नातियों के निधान, निपुणताओं के सुन्दर, परम उत्साहों के सागर
 प्रातःस्मरणीय, सनातनधर्म के दृढतम पाषाण, अवशर धारण कर आ
 शिव के समान, मराठा शिवाजी पूना नगर से निकट ही सिद्धग
 सेनामदित रह रहे हैं । दंकापुर-नरेश के साथ इस समय इ
 घुड़ज री हुई है । “या तो कार्य को ही पूरा करेगा या दे
 ही नष्ट कर दारैगा” यह उनकी सारगर्भित तामीर प्रतिज्ञा

प्रतिष्ठा । सतीनाम्, सताम्, प्रवर्णिकस्य आर्यकुलस्य, धर्मस्य, भारतवर्षस्य च आशा-सन्तान-वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः । इयमेव वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य । किमधिकं विनिवेद्यामो योग-बलाद्यगन-सकल-गोच्यतम-वृत्तान्तेषु योगिराजेषु” इति कथयित्वा पिरराम ।

तदाकर्ण्य विविध-भाव-भङ्ग-भासुर-वदनो योगिराजो मुनि-राजं तत्सदृशरोधं निपुणं निरीक्ष्य, तेषामपि शिष्यवीरान्नरङ्गता-मङ्गीकृत्य, मुनिप्रेषज्याजेन मध्वर्मगङ्गाप्रतिनध्वोमङ्गीकृत्य, “विज-यतां शिष्यवीरः, सिद्धयन्तु भवतां मनोरथाः” इति मन्दं व्याहार्यन् ।

अथ किमपि पिशुच्छिगमीति शनैरभिधाय बह्वकरसम्पुटे सौम्यकण्ठे जटिलमुनी “अयगतम्, ययनमुद्धे विजयस्य, दिवादापद-

शयेनाभिक इति नैशयान्, तस्मिन् । आशाया, सन्तानम् = परम्परा, तस्य, वितानम् = विस्तारः, तस्य । योगवर्धन = योगसाधनेन, अयगत = विजितः, सकलां गोच्यतम = (इष्टा-मङ्गी वृत्तान्तो वेदनेषु ।

सन्तानो, सञ्जनो, द्विजो, भाषो, भय भार भारतवर्ष की आशाओं के एकमात्र आधार रहा है । भारतवर्ष की वही वर्तमान दशा है । आप योगिराज हैं और योगवर्ध से सारे गार्ह वृत्तान्त भी जानते हैं, अतः आपसे अधिक क्या कहना ?” यह कह कर मुनि चुप हो गये ।

यह वृत्तान्त सुनकर, योगिराज का मुन्य विविध भाव भङ्गियों से लिप्त हुआ । उन्होंने मुनि और उनके सावित्री को गौर से देखकर, उन्हें भी जिन-जिन के अन्तर्गुह सहायक समझ कर, और मुनि के वेप के पहाने धारि करने की रक्षा करने में कटिबद्ध जानकर, धीरे से ‘यह शिवाजी की भाँके मनोरथ पूरे हो’ यह कहा ।

‘मैं कुछ कुछ भावना हूँ’ धीरे से यह कह कर, कण्ठापी-कण्ठपूर्वक हाथ जोड़ने पर योगिराज बोले, ‘मैंने समस्त विश्व,

प्रथोऽपि च सग्निसाहाय्येनाऽऽत्मानमुद्धरिष्यति" इति सममा-
लीन । मुनिश्च श्रुतीमिश्रुदीयं, पुनः विशिष्टिचार्य्येष, शून्येव च,
दीपंमुक्तं निःशून्य, रोगायमानंरां च किञ्चिदुद्धृतैर्वाण्यविन्दुभिरातुल-
नदत्तो "भगवन् ! प्रायो दुर्लभो गुम्मारश्राणां साक्षात्कार इत्यप-
राऽपि दृष्टाऽऽज्ञादयति माम् " इति न्यषेदीन् । न च "आम् !
उनीदृषम्, जीवति न, मुनेनैवाऽऽजने" इत्युदीतरम् । अथ "तं
वदा ऽऽद्यामोति" पुनः श्रुत्वा "तद्विवाहममये दृश्यति" इत्यभि-
धाय, तद्विनि मानवना-वयमानं च गम्भीरम्यरेणोगत्वा, सपदि
काम्यनाम्, गण्डमीलान, अधिन्यराज्ञाऽऽज्ञा पुनस्तस्मिन्नेव पर्यंत-

हीनं, तं मिदृषम्, गर्वतच्छोकगोतकमिदम् । रोगदृष्टमानैः = भयं
या भयैः । क्वारीदृष्ट = स्वकृतम् । उदीतरम् = उत्तरवाच्यकार । सान्त्व-
नं = शान्ति । अत्ययम् = अद्वेषः सतिदिता भूमिम् ।
गण्डमीलान = पर्वतान् पतिशान् स्फूर्णशानान् । "गण्डशैलान् प्लुताः
स्फूर्णशानानिरे" लमः । अधिन्यराज्ञा = अद्वेषः भूमिम् । "उपा-

पारत पुनः मे विवाहो की जंत ही होगा, दुर्लभ मे आपनिवस्त होकर भी
मित्री की स्थापना से मे अने को उत्तर लगे ।' मुनि ने भी 'भगवन् !
ममय गता' यह कह कर, पुनः कुछ विचार-मा कर के, कुछ स्मरण-मा
कर के, लम्बी और गहरी स्ति लेकर, गीके जाने पर भी कुछ निद्रा आवे
अभुक्तों से आशुक्तनेव होकर निवेदन किया, 'भगवन् ! आप के समान
महात्माओं का दर्शन दुर्लभ है, अब एक और प्रश्न मुझे उत्पन्न कर रहा
है ।' योगिगत्र के 'ही स्वयं विवा, यह जतिन है और मुक्तपूर्वक ही
है ।' यह उत्तर देने पर, मुनि ने फिर पूछा 'उसे कर देना ।' 'उसके
विवाह के समय देना ।' यह कह कर, गम्भीर मन से अनेक प्रकार के
आश्वासन देकर, योगिगत्र इस समय पर्वत की पाठा, पर्वत से गिरे हुए-
बढ़ा-बढ़ी शिवाओं और पर्वत के ऊपर का भूमि पर चढ़कर पुनः

कन्दरे तपस्तप्तुं लगाम ।

ततः शनैः शनैर्निर्यातिष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके, मुनिगौरवदुमाहृत्य, विजयपुराधीनाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योदुषु ससेनं प्रस्थितस्य अपजलस्नानस्य विषये यावत्किमपि शब्द-मियेष, तावत्पादचारव्यनिमित्तं कर्त्तव्यधीनीम् । समपधस्यत्य-मनस्के इय मुनी, गौरवदुरपि तेनैव ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट इय समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य, पथ्यंष्ट्य, 'कोऽयम् ?' इति च साम्रेष्टं व्याहृत्य, कमथनवलोक्य, पुनर्निवृत्त्य, 'मन्ये मार्जारः कोऽपि' इति मन्दं गुरवे निषेध, पुनस्तन्ययोपयिषेश । मुनिश्च 'मा स्म कश्चादितरः भोपीन्' इति सशङ्कः अणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारेभे—

पिम्या त्यक्तसामन्त्रादयोरि" सुमयशारि त्यक्तम् । "उपत्यकाऽङ्गसभा भूमिकर्ष्यमपित्यके" त्यमरः । निर्मक्षिके = अधिकानामभाषो निर्मक्षिके हरिमन्, एकान्ते । माननसञ्चारदेशे सर्वत्र मक्षिकास्तिष्ठन्तीति तदभाषेन चानसञ्चारामाषो लक्षणे । मा भोपीन् = मा आकर्णयतु । उपन्यस्तुम् =

गुना में तपस्या करने चले गये ।

उसके बाद, अपरिचित लोगों के धीरे-धीरे चले जाने और एकान्त हो जाने पर, मुनि ने ज्यों ही गौरवदु को बुला कर, शीशपुरनरेश की आज्ञा से दूर शिवाजी के साथ रहने के निवेदन के साथ कूच कर, बुके अश्रवण सौ के शिव में कुछ पूछना चारा, कि किमी के देगे की आरुड मुनाई दी । उसे बुन कर मुनि के अन्वमनस्क हो जाने पर, वह गंगा ब्रह्मचार, उमी ध्वनि से आहूत हुआ मा उठ कर, चारी और मर्जीनीति देन कर, टहल कर बार-बार 'बोन है' कर कर, किमी को न पकर, फिर शीतल दुख से धरि से 'वाडय होता है कोई बिनी है' पद कर, फिर बैठे ही बैठ गया । मुनि ने भी 'कोई वृत्ता न मुन ले' रस से फोड़ी देर बक कर, फिर करना शुरू किया—



भारतभूषण भारतरत्न भारतभास्कर, पट्टिकाज्ञानक, ज्ञानावधान,
 समीक्षार, महापद्मसूचक मुद्रादि, माहिष्याचार्य—
 ज्ञानि महापद्मसूचक

“यस्य गौरसिंह ! भद्रमत्यन्तं गुप्यामि त्वयि, यत्तमेकादो
अपञ्चलग्नानाम् श्रीनथाय तेन दासोक्तान् पञ्च प्रादणतनवाश्च
मोक्षयित्वा आनीतवानसौति । कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदं
राजपुत्रदेसोपसृष्टिप्रियाणाम्” । तावन् पुनरध्वन्य मर्मरः पादक्षेपध ।
ततो पिरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोक्ष्य शिष्टापोठमं समागच्छ,
निपुनतया परितः पदस्रग्वि कारणं किमपि नापलोकयामास
चरणोपशब्दम् । अतः पुनरेव नानेन निपुनं निरीक्षमाणेन गौर-
सिंहेन दृष्टं, यत् कुटीर-निजकटस्थ-निजकुटुम्ब-कदलोद्गटे द्विगुणर-
योऽतिवर्गं कम्बन्ते इति । तदंशं सज्ञयस्थानमित्यद्भुत्या निदिश्य,
कुटीर-बलीके गोपयित्वा ग्धापिनानामर्सानामेकमाकृष्य, तिष्ठ-

रूपविक्रम् । राजपुत्रदेसः = राजपुत्रस्य देसः यो नृपते लोके सम्प्रति
“राजपूताना” इति प्रसिद्धस्य देसो देशः । मर्मरः = द्रुमवर्ण-
ध्वनिः । “भव मर्मरः” । स्वनिते मर्मरवर्णनामि” इत्यर्थः । एकतानेन =
एकचित्तनेन । निपुण एव निजकुटुम्बाः = पक्षपातः, “दहाधमादु
निपुण” इत्यमरः, कुटीर-कटे तिष्ठन्तीति कुटीर-निजकटस्थ-वाच्यं ते पक्षपातमास्तेषु,
कदलोद्गताम् = लम्बाणाम्, कुटुम्बः = समूहः । बलीके = परले । “बलीकन-प्रे

“येरा गौरसिंह ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम भजेते ही
अपञ्चल सर्पों के तीन पोखी और उसके दाय दाय बनाये गये पाँच
प्रादण बालकों को गुरदा कर ले आये । तुम ऐसे क्यों न होगे, राजपूताने
के धारियों का कुल ही ऐसा है ।” इसी बीच मर्मर ध्वनि और पैरों की
आहट पुनः सुनाई दी । तब बोलना बन्द कर, मुनि ने स्वयं उठकर एक
ऊँची चिला पर चढ़कर, चारों ओर भलीभाँति देखा, पर पैरों की आहट
का कोई कारण नहीं दिखाई दिया । इसलिये, एकाग्रचित्त होकर पुनः भला-
भाँति देखते हुए गौरसिंह ने देखा ॥ कुटीर के निजकट की पक्षपातिका
बली के कुटुम्ब में दो-तीन पेड़ बहुत अधिक दिख रहे हैं । ‘सन्देश’

कन्दरे तपस्तप्तुं जगाम ।

ततः शनैः शनैर्निर्यातिष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके,
मुनिगौरवदुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं
ससेनं प्रस्थितस्य अपञ्चलखानस्य विषये यावत्किमपि प्रष्टुं
भियेष, तावत्पादचारर्चानामव कस्याप्यभीषीत् । तमवधार्थान्
मनस्कं इष मुनी, गौरवदुरपि तन्नय ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट इव
समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य, पृथ्ग्यथ, 'कोऽयम् ?' इति च
साध्वेहं व्याहृत्य, कस्यचनबलोक्य, पुनर्निपुत्य, 'मन्ये मार्जारः को
ऽपि' इति मन्दं गुरवे निवेश्य, पुनस्तर्धवापयिष्येति । मुनिश्च 'मा स्म
कश्चिदितरः भीषीत्' इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारम्भे—

धिया त्वकृत्तासस्त्राकृष्टयोरि" तुभयशरि त्वक्त् । "उपत्यकाऽद्रेऽसमा
भूमिरुर्ध्वमधित्यके" त्वमरः । निर्मक्षिके = यक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं
तस्मिन्, एकान्ते । मानवसञ्चारदेशे सर्वत्र यक्षिकास्तिष्ठन्तीति तदभावेन
वन-सञ्चारभाषो तस्मिन् । मा भीषीत् = मा आकर्णयतु । उपन्यस्तुम् =

गुना में तरस्या करने वाले गये ।

उसके बाद, अपरिचित लोगों के धारे-धारे चले जाने और दृष्टान्त
हो जाने पर, मुनि ने ज्यों ही गौरवदु को बुला कर, बीमापुरनरेश की
आज्ञा से वर शिवाया के साथ बहने के लिये सेना के साथ कुछ कर
बुके अठ्ठबल लों के निषय में कुछ पूछना चारा, कि किसी के पैरों की
आरत मुनाई हो । उन्हें मुन कर मुनि के अन्वयनस्क से हो जाने पर, वह
गोग दक्षप्रार, उठा पर्वत से आहूय हुआ गा उठ कर, पागों और
मज्जाभिनि देन कर, यह कर बार-बार 'कोन है' कर कर, किना को न
चकर, फिर लोट मुह से पीर से 'मादम होना है कोई बिली है' यह
कर कर, फिर देखे ही बैठ गया । मुनि ने ना 'कोई दूसरा न मुन में' इत
आहूय से बोला देर तक कर, फिर बहना दुरु किया—

("कन गौरमिह ! भहन-यत्नं गुण्यामि त्वयि, वरपमंकावो
अपञ्जनास्य ग्रीनधान् तेन दासोहृतात् पत्र माह्वगतनयांश्च
मोर्षादिषा आनीनवानमोनि । कथं न भवेरीहताः ? गुल्मेवेहर्त
रात्रपुत्रदेशीयपुत्रिदाण्याम्" । तावन् पुनरभ्यस्त मर्मरः पादक्षेपध ।
तमो विगम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोक्ष्य शिलापीठमेरमागच्छ,
निगुप्तया परितः पश्यन्नापि कारणं किमपि नापलोकयामास
चरणक्षेपजन्दम्य । अतः पुनरेरतानेन निपुणं निगीध्रमाणेन गौर-
मिहेन दृष्टं, यन् कुटीर-निष्ठम्य-निष्कृतक-कदलोहृटे द्विशत-
सोऽनितगो वन्द्यते इति । तदेव मंजयगानामित्युक्त्या निर्दिश्य,
कुटीर-बलीकं गोर्षादिषा स्थापितानामसोमामेकमाकृष्य, रिक्त-

कथयितुम् । रात्रपुत्रदेश = रात्रपुत्रपत्न्यापञ्जनीन्तो लोके सम्प्रति
"गह्वरुताया" इति प्रसिद्धमन्त्रपाररेणो देशः । मर्मरः = दुष्कर-
ज्वनिः । "अथ मर्मरः । स्वनिष्ठे वध्वरयनामि" इत्ययम् । एकतानेन =
एकचित्तन । निपुण एक निष्कृतकाः = यथायथा, "यथायमानु
निपुण" इत्यमरः, कुट-पीनकटे निहन्तीति कुटीरनिष्ठस्याश्च ते यथायमास्तेषु,
कदलोमाम् = सम्भाषाम्, कूटे = समुद्रे । बलीकं = परले । "वर्जकनभे

"देख गौरमिह ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम भरेले हो
अपञ्जक नदी के तीन बोटों और उसके द्वारा दास बनाये गये पक्षि
जाहज काटको को छुड़ा कर ले आये । तुम ऐसे क्यों न होगे, गह्वरुताने
के धविषी का कुन हो ऐसा है ।" इसी बीच मर्मर ज्वनि और पैरी की
आहट पुनः सुनाई दी । तब बोलना बन्द कर, मुनि ने स्वयं उठकर एक
ऊँचा शिला पर चढ़कर, चांगी ओर झली-नीति देखा, पर पैरी की आहट
का कोई कारण नहीं दिखाई दिया । इसलिए, एकाग्रचित्त होकर पुनः भला-
नीति देगाने हुए गौरमिह ने देखा कि कुटीर के निष्ठ की परराष्ट्रिका के
बली के छलमुड में दोन्तीन पेड़ बहुत अधिक दिक रहे हैं । 'सन्देह

इमेनं च मुनिना प्रपुतोऽनुगम्यमानः कपोल-तल-विलम्बमानान्
 चक्षुभ्रम्यन् कुटिल-कृत्वा चामकराङ्गुलिभिरपसाग्यन्, मुने
 वेपोऽपि किञ्चित्कोप-कपायित-नयनः, कर-कम्पित-कृपा-कृ
 कृपाणां महादेवमारिगवयिषुमपम्विवेपोऽर्जुन इव मान्दवंरस्त
 इयमानः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्च ललाटवर्ति
 विनान-वेष्टित-रम्भा-स्मम्भ-त्रितयस्य मध्ये मोडयन्-यग

पदप्रान्त” इत्यन्तरः । “छप्पर की ओरी” इति हिन्दी ।

विपुल-इमेन = एवमरेण । कपोल-तल-विलम्बमानान् = तल-
 मंडप्रान् । किञ्चित्कोपेन = ईषत्कोपेन, कपायिते कटुपिठे, नयने = नेत्रे
 यन् सः । करे कम्पितः कृपाकृपयः = दयागन्धः, कृपाणः = अतिरूप-
 नः । आरिरावयिषु = चैरिचुनिषु । शङ्करसमारुचनाय करकम्पितचारे
 मप्यनराण्डवस्तवभचारेति महामारुताया कथा किरातार्जुनीयमहाकाव्यनू-
 न्ता । पूणारमा । ललानाम् = वल्लीनाम्, “वल्ली तु वलतिवले” इत्यन-
 प्रनानानि = एवमतन्तवस्तेषां, विनानम् = विस्तारः, तेन वेष्टितम् = वस्-
 तितम्, रम्भास्मम्भानां त्रितयम् = कदम्ब, स्तम्भनयं, तस्य । यमनयुवकम्
 पदप्रदित्यन्तरः । तमेव विधिनति । नैल्या रक्तं नीलं, तच्च वस्त्रमपण्डम्

म्यान रहा है’ ऐसा उँक्यों के इशारे से बताकर, छप्पर की ओरी में
 उमड़कर गली गर्वा ठप्पकारी में से एक तख्तार खींच कर गौरिसिंह उसी
 ओर चढ़ दिया । मुनि गाल्य हाथ ही उसके पीछे हो डिबे । गालों पर
 लटकते हुए और आँखों पर आ जाने वाले अंगने पुँधगले बालों की
 मेलाकते हुए, मुनिबंध में होते हुए भी कुछ क्रोध से लाल नेत्र दिये हुए,
 ईश में निवेश तडगाग स्थिे हुए, महादेव को आराधना करने के लिए
 तन्त्र वेपसाग अर्जुन के ममान मान और वोर दोरी रसी से सुशोभ
 गौरिसिंह, सट उमड़े समीप आ पहुँचा और वहाँ आकर उसने
 ललाटों का विनान वेने ले वेष्टित केले के तान पेशों के बीच, नीले करदे

[illegible]

हस्तेनेव मुनिना शृङ्खलानुगम्यमानः कपोल-तल-
चक्षुश्चम्बिनः कुटिल-कृचान् वामकराद्बुद्धिभिरपसारयन्, कुं-
वेपोऽपि किञ्चित्कोप-कृपायित-नयनः, कर-कम्पित-कृपा-कृ-
कृपाणो महादेवमारिराधयिषुस्तपस्विवेपोऽर्जुन इव शान्तवीररत्न
द्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्च लता-प्रदानं
विनान-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भ-त्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्र-सङ्घ-

पटलप्रान्त” इत्यमरः । “छप्पर की ओरी” इति हिन्दी ।

रिक्तहस्तेन = धन्यकरेण । कपोलतल-चिह्नम्यमानान् = गन्ध-
संज्ञान् । किञ्चित्कोपेन = ईषत्कोपेन, कृपायिते कटुपिते, नयने = नेत्रे
यस्य सः । करे कम्पितः कृपाकृपणः = दयाधन्यः, कृपाणः = अनिर्दय-
सः । आरिराधयिषुः = सेवितुमिच्छुः । शृङ्खलानुगम्यमानान् करकलितचक्षु-
मध्यमवाण्डवस्तपश्चारेति महाभारतोपा कृपा किरातार्जुनीयमहाकाव्यमञ्ज-
भूता । पूर्णोपमा । लतानाम् = वस्त्रानाम्, “वस्त्री तु मततिलते” इत्यमर-
प्रनानानि = सूक्ष्मतन्तवस्त्रेषां, विनानम् = विस्तारः, तेन वेष्टितम् = दृ-
ष्टितम्, रम्भास्तम्भानां त्रितयम् = कदलीस्तम्भत्रयं, तस्य । यवनयुग्म-
पश्यदित्यन्वयः । तमेव विधिनष्टि । नील्या एक नीली, तच्च वस्त्रलण्डम्

‘धान बर है’ ऐसा उँगलों के इशारे से बताकर, छप्पर की ओरी में
छिराकर रखी गयी तलवारों में से एक तलवार खींच कर गौरसिंह उस
भोर चले दिया । मुनि खाली हाथ ही उसके पीछे हो लिये । गालों पर
झटके हुए और अस्त्रों पर आ जाने वाले अपने सुँघराले बालों को
सँभालते हुए, मुनिवेप में होने हुए भी कुछ कोप से लाल नेत्र किये हुए,
हाथ में निर्दय तलवार लिये हुए, महादेव की आराधना करने के लिए
तन्मयी बेचमारी अर्जुन के समान शान्त और वीर दोनों रसों से सरभोर
गौरसिंह, झट उसके समीप आ पहुँचा और वहाँ आकर उसने
लताओं की बिछुरा देखी से वेष्टित कले के तीन पेड़ों के बीच, नीले कपड़े

त्वं दीर्घ-दाव-दहने पठद्वायितोऽसि ।

यवनयुधकः—अरे रे बाबा ! तू रात्री युष्म-कुटीरे रदतीं समयासो ब्राह्मण-जनयां सपदि प्रयच्छत, तत्कदाचिद् दयया जीवतोऽपि त्वजेयम्, अन्यथा मदसिभुजग्न्या दृष्टाः क्षणान् कथावशेषाः सचत्स्येध ।

कलकलमेतमाकर्ण्य दयामवदुरपि कन्यासमोपाकुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्याप्तोऽयं गौरसिंह इति मास्म गमहन्वोऽपि कश्चिन् वन्द्यकामपञ्जिहीर्षुरितं पल्लीकादेकं विकटरङ्गमाकृष्य तस्यै गृहीत्वा कन्वकामं रक्षन्, तदभ्युपनि-कुटीर-निवृत्त एव तासौ ।

बाधयानि, देशं ते । दीर्घभासो दावदहनः = वनामिश्रिमन् । “दशशो वनानक” इत्यमरः । जीवनं, यतो वसतिदम्-कुष्मानित्पण्याद्विद्यमान-विशेषस्य विशेषणम् । मदतिरेव भुजग्निरिति = स्त्रीणां, तथा । करकम् । संचत्स्येध, “इत्यपः स्वसनोरि” हि परामैरदम्, “न वृक्षपभ्यु-वं” इति धिदेयः ।

कलकलम् = कोलाहलम् । पल्लीकान् = पल्लवान्तात्, तथा = कन्व-कया, आयुगितस्य = सेवितस्य, कुटीरस्य निवृत्ते सत्यौ = स्थिताः । तद्वत् जलने आ गये हो ।

यवन युधक—अरे बकवादो ! इस रात जो ब्राह्मण की सड़की रोली-रोली गुमारी कुटी में आई थी, उसे गुमारी मेरे हवाले कर दो तो यादद दया करके तुम्हें बता छोड़ दूँ, मही तो छप भर में ही मेरे इस मागिन हा लकड़ार से ईंसे गये गुमारी शिर्षे कहां-ना हा बाबा बजेगी ।

यह कोलाहल सुनकर, सचका बहचारी भी, बाबिकर के पास से उठ कर, यवन युधक और गौरसिंह को देखकर यवन युधक का काम उपाम कर सकने के लिए अकेले गौरसिंह को ही बायीं लवहावर, ‘बाबिकर का अपहरण करने कोई दूसरा यवन भी न आ पावे’ यह सोचकर छप्पर का ओरी से एक भयकर लकड़ार खींचकर उसको मूठ पकड़कर, बाबिकर का रक्षा करता हुआ, जिस कुटी में बाबिकर थी उसके सवाँन हो खड़ा हो गया ।

युवकम् । ततः परस्परं चाक्षुषे सम्पन्ने दृष्टोऽहमिति निश्चित्य,
उत्प्लुत्य, कोशान् कृपाणमाकृष्य, युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे ।
ततस्तयोरेवं संवाताः परस्परमाख्याः ।

गौरसिंहः—कुतो रे यवन-कुल-कलङ्क !

यवन-युवकः—आः ! वयमापि कुत इति प्रष्टव्याः ? भारतीय
कन्दरिकन्दरेष्वपि वयं विचरामः, गृह-लाङ्गूल-विहीनानां हिन्दु
पद-व्यवहाराणाञ्च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेटकोडया रमामहे ।

गौरसिंहः—[सकोपं विहस्य] वयमापि तु स्याद्भूगतमस्त्व
वृत्तयः शिषस्य गणा अत्रैव निवसामः, तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव

वयत्कम् । चाक्षुषे = चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षे । उत्प्लुत्य = उत्तल्य । “कूद-
कर” इति हिन्दी । युयुत्सुः = योद्धुमिच्छुः । अवतस्थे = विपतः, “सम-
प्रविश्यः स्थ” इत्यात्मनेपदम् । भारतीयाः = भारतमवाः, ये कन्दरिणः =
शैलास्तेषां कन्दरेषु = गुहासु । आखेटकोडया = मृगयाखेड्या ।

स्वाङ्गे आगता सत्त्वाः = प्राणिन एव वृत्तयः = जीवन-

से कलङ्कित मुखवाले, लगभग बीस वर्ष की उम्र के एक सुसलमान
युवक को देखा । तदनन्तर सामना हो जाने पर, ‘मैं देल लिया गया
हूँ’ वह समझकर, छरमुट से कूदकर, भ्यान से तलवार लींचकर, वह
सुसलमान युवक भी लड़ने के लिए सामने खड़ा हो गया । तदनन्तर
उन दोनों का आपस में इस प्रकार बातचीत हुई—

गौरसिंह—क्यों रे यवन कुलकलङ्क ! यहाँ कहीं से आया !

यवनयुवक—अरे ! हमसे भी ‘कहाँ से’ पूछता है ! हम भारतवर्ष
की पर्वतगुफाओं में भी विचरण करते हैं और हिन्दू नामधारी तुम जैसे
छीग-पूछ विहीन पशुओं का शिकार कर आनन्द मनाते हैं ।

गौरसिंह—(कोपपूर्वक हँसकर) पास में आये हुए कुछ जीवों पर हो
‘वित’ करने वाले शिव के गज रूप हम लोग भी तो यही रहते हैं, तो
आज का मुरह बहुत शुभ है, तुम स्वयं ही पंचवती शिवान्नि में पतंग की !

त्वं दीर्घ-दाघ-दहने पतद्भाषितोऽसि ।

यवनयुवकः—अरे रे पाचाल ! छो राखी गुप्प-कुटीरे रुदवी समायातां माध्व-तनयां सपरि प्रयच्छन्, तत्कदाचिद् दद्या जीयतोऽपि त्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुजङ्गिन्या दष्टाः क्षणान् कथावदोषाः सयत्नर्थ ।

कलकलमेतमाकम्प्य इवामबदुरपि कन्यासमोपादुत्याय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनयुवकं पथ्यामोऽयं गौरसिद्द हाव मा ॥ गमदन्त्योऽपि कश्चिन् वन्द्यकामपञ्जिहीर्षुरिति यत्लोकारेकं विकटराक्ष्णानाकम्प्य तस्यै गृहीत्वा कन्यकां गच्छन्, तदभ्युपित कुटीर-निकट एव तथी ।

छापनानि, देशं ते । दर्वंधासी दाघदहनः = वनाग्निसन्धिम् । “दवरासी वनान्त” इतिमरः । जीयतः, यतो क्वचिदम्-कुप्पानित्यप्यादिवमान-वितोष्यस्य वितोषणम् । मदमिरेव भुजङ्गिनी = सर्पिणी, तथा । क्वचम् । संयत्नर्थ, “वृज्जपः त्यजेतोरि” वि परमैरदम्, “न इन्द्रपथुर्भ” इतिभिषेधः ।

कलकलम् = कोलाहलम् । पटीकान् = परलमान्छात्, तथा = कन्य-कया, अभ्युपितस्य = संवित्तस्य, कुटीरस्य निकटे तथी = स्थिता । हर वजने आ गये हो ।

यवन युवक—अरे दकसादी ! कम पाउ जो माकण की कदवी रोडी-रोडी गुहायी कुटी में आई थी, उसे तुम्हें बेरे दशाके कर दो तो द्यादद दया करके तुम्हें बाल छोड़ दूँ, नहीं तो धन भर में हा मेरी इस नागिन सा लकवार से ईंके गये गुहायी सिद्ध कराना ॥ दाघ दहने ।

यह कोलाहल सुनकर, लंबला ब्रह्मचारी भी, बाजिध के पास से उठ कर, यवन युवक और गौरसिद्द को देखकर यवन युवक का धन लहान कर सबने के लिए अंकेले गौरसिद्द को हा बाधी लकवार, ‘बाजिध को अवरान करने कोई दूसरा यवन भी न आ जान’ यह सोचकर छदर का ओरी से एक भनकर लकवार लौटकर उसकी देठ पकड़कर, बाजवा लकवार को हा बाधी कुटी में बाजिध की उसके सर्वान हो लहा दो

गौरसिंहनु “कृटीगन्तः कन्यकाऽस्ति, सा च यवन-वध
व्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, किं नाम भ्रष्टम्!
तद् यावत्तव कवोष्ण-शोणित-वृषित एव चन्द्रहासो न चर्तते,
तावत् कूर्दनं वा, उत्फालं वा यच्चिदोपसि तद्विधेहि” इत्युक्त्वा
व्यालीढमप्यादया सज्जः समतिष्ठत ।

ततो गौरसिंहः दक्षिणाम् चामांश्च परश्चानाम् कृपाणमागान्
क्रीकृतयतः, दिनकर-कर-स्पर्श-चतुर्गुणीकृत-चाकचक्यैः चञ्चल-
हासचमत्कारैश्चक्षुःपि मुष्णतः, यवन-युवक-हनकस्य, केनाप्यनु-

यवनानां वध एव व्यसनं यस्य तादृशे । कवोष्णस्य = ईषदुष्णस्य,
“कोष्णं कवोष्णे मन्दोष्णे कदुष्णे त्रिषु तद्वत्” इत्यमरः, शोणितम् = छी-
तस्य, वृषितः = पिपासितः । चन्द्रहासः = स्तब्धः “अद्भुतेन निश्चिद्यचन्द्रहासा-
सिरिष्ठय” इत्यमरः । कूर्दनं वा उत्फालं वा = “कूर्दना, उछलना” इति
हिन्दी । व्यालीढम् = युद्धावस्थानविशेषः, तन्मप्यादया । कोदण्डमग्नना-
दिषु प्रसिद्धमिदम् । “पैतरा” इति हिन्दी ।

दिनकरकराणाम् = सूर्यकिरणनाम्, स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतम् =
वर्धितम्, चाकचक्यम् = प्रतिभासविशेषो यैलैः । चञ्चल-
हासचमत्कारैः = सञ्चलस्वङ्गचमत्कारैः । मुष्णतः = चोरयतः । हतकस्य =
दुष्टस्य । केनापीत्यनुपलक्षितविशेषणम् । “सविशेषणानी हसिर्न” इति पुनः

गौरसिंह, “बालिका कुटी के भीतर है, यवनों के वध के व्यसनी मेरे
बाँते जाँतू उसे छूना तो दूर, देख भी नहीं सकता । अब तक तेरे लून
की प्यासी यह तज्ज्वार नहीं करता तब तक धाढ़े जो उछल-कूद मचा
ले ।” यह कहकर पैतरा बना कर, पैवार हो गया ।

तब गौरसिंह ने, तलवार के, दावें बायें सेरुद्धों पैतरे बदलने वाले,
गुर्ग की धिरणी के समझ से त्रिमूर्ति चमक चौगुनी हो रही थी, ऐसी
तब तो दुर्दैव तज्ज्वार की चमचमाहट से आँखों को चौंका रहा उस दुष्ट

साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास

वसुधा में लगभग ११ बोन पुर्व 'रावन जी की पूजा' नामक भाते
वर्षादियों में पिरा वाम बोर-अम्बिनी भूमि रात्रमान के बमल-कोमल
में बरन की भाति सोभित है। मानसिह के द्वितीय पुत्र दुर्जन सिंह
जो अपनी रात्रपानी बनाया था। दुर्जन सिंह के वध में टाकुर
जिह हुए, जिनके दाद-पण्डित आदि मोर, पण्डितगोपीय, यमुवैदी,
जबर, भोरा बजावनन थी गोविन्दराम जो हुए। पं० गोविन्दराम के
पुत्रीय पं० रामाराम जी लोचनबाबा करने हुए काशी आवे और काशी-
वर्तियों के आग्रह के कारण बालमन्दिर मुहल्ले में बस गये। पं० रामा-
राम जी उर्वरिप और पण्डिताई के अतिरिक्त जैन-देव का व्यवहार भी
काने थे, किन्तु व्यवहार-मुहल्ल में होने के कारण महाकवी का व्यवहार
आपके जिये साँपा रहा।

भाद्रपद सुवर्ज १ सं० १८०२ वि० की बुधवार के दिन पं० रामाराम
के ज्येष्ठ पुत्र पं० दुर्गादत्त का जन्म हुआ। पं० दुर्गादत्त बहुमुखी प्रतिभा
के धारिण थे और मरहूत तथा हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक तथा कवि थे।
वसुधा के मिलावटी के मुहल्ले में आपकी समुदाय थी। वही बंन मुहल्ल
/ सं० १९१५ वि० की आरके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। नवरात्र के
अष्टमी के दिन जन्म लेने के कारण पुत्र का नाम अम्बिकारत तथा
गया। किन्ती ने टीक ही कहा है 'होलहाय-विजयान के होत चोकने पान'।
वाग्य वर्ष की जन्मायु में ही व्यास जी भारतेन्दु जी द्वारा आवर्तित बहि-
मार्ष्टिवा में समस्या-निर्णय बजने लगे थे।
सं० १९१८ में १३ वर्ष की आयु में आपका विवाह हुआ।

प्रथमो निधासः

नोद्योगः, अयमात्रेव स्वासिना कलिन-कलेद-संज्ञान-भेद-
जालं विनिधिल फच-मुल-मालं मय-भू-भयानक-मालं
रश्चिच्छेद ।

अथ मुनिरपि दाहिम-पुमुमानरणाच्छायायामिव माद-रधि-
रपाया ज्वलदङ्गार-चिनाया चिनायामिव वमुधायां दयानं विमु-
न्यमापेक्ष्य इति मुच्यते । स्वासिना विरश्चिच्छेदेत्यर्थः । शिरो
वेदिनः—कलिनेन = व्यालेन, कलेदः = भवेन, सञ्ज्ञानम् = उत्त-
मम्, रश्चिच्छेदः = परमं स्वयं, “यमां निदायः स्वेद” इत्यमरः,
जालम् = मूलो यमिस्तत् । विनिधिलाः = इतस्ततः पर्यन्तः, वपा-
नाम् = वेशानाम्, मुलम् = मूलम्, माला = पङ्क्तिः, यमिस्तत् ।
भयानका = शिष्या, मुधा = दृग्दर्शनेन, “ऊर्ध्वं दृग्दर्शनी मुधा विराधि”
इत्यमरः, भयानकम् = मीरणम्, भावम् = लयम्, यमिस्तत् ।
जालम् मालम् मालमिव यमकम् ।

वमुधायाम् = वृषिण्याम् । दयानम् = पतिम् । वमुधां विनिधिल-
गादेन = पन-भूतेन, रधिरेण = लंघितेन, दिग्धायाम् = नितायाम् ।
“शिरो विराजमाने दृग्दर्शने विनिधिलङ्ग” इति मेदिनी । उत्पले-
दाहिमम् = वरकम्, “दाहिमस्तु विनिधिलः स्वादेक्षया वरकं विधि” वि-
मेदिनी, पुमुमानाम्, आभरणेन = विदरेण, आच्छायायामिव ।
पुनरुपेक्षते ज्वलदङ्गारं, चिनायाम् = व्यापायाम् । चिनायाम् =
चिनी, “चिना चिना चितिः विराधि” इत्यमरः । मयमापेक्षानं न
पावनैश्चिना प्राप्यते । हिन्दुवरेण मुमुष्याय निरतः कालं दृष्टे सा

यवन के भय करने से निकले हुए पर्वतों से तर, अस्तव्यस्त पानी वाले
देवी मीरी से भयानक लगने वाले ललाटे वाले शिर को देखो सारा
काट डाला कि कोई देख भी न पाया ।
तबभार मुनि ने भी, भयानक के पुनो ने गिलीने में टकी हु
गादे मूल से लयम हो रही, काले मीरी से अस्त चित्त के

ज्यमान-भारतभुवमालिङ्गमिव निर्जीवीभयदङ्गवन्ध-चाडन
परं शोणित-सङ्गान-ज्याजेनान्तःस्थित-रजोराशिमियोदिरन्तं कलित
सायन्तन-धनाऽऽडम्बर-विभ्रमं सतत-ताम्रचूड-भक्षण-पातदन्त
ताम्रीकृतं छिन्न-कन्धरं यवनहतकमवलोक्य सङ्घं ससाधुवादं संगे
मोहमञ्च गौरसिंहमास्मिप्य, भ्रूमङ्गमात्राऽऽङ्गनेन सृष्टेन मृतं

सम्भाऽनेनेति ध्वनिः । चिन्ताचितयोर्दृष्टकल्पयांलोचनापरमि
पद्यमनुभक्षपययधिकम्—“चिन्ताचिताद्रयोर्मध्ये विन्दुमात्रं विर्येपकम्
सवीर्यं ददते चिन्ता निवीर्यं ददते चिन्ता ॥” यवनहतकं विशिनष्टि—निर्जीवी
भयताम् = निष्पाणता गच्छताम्, अङ्गवन्धानाम् = शरीरसन्धानाम्,
चालने, परम् = निरतम् । शोणितसंघातज्याजेन = क्षिप्रवाह
लेन । अन्तःस्थितो यो रजोराशि = रजोगुणसमूहः, तमिवेत्युपेक्षा ।
उद्गिरन्तम् = वमन्तम् । कलितः = धारितः, सायन्तनस्य = मायमयस्य,
धनाडम्बरस्य = मेघविडम्बनायाः, विभ्रमः = मिलासो येन तम् । सत-
तम् = सर्वदा, परं ताम्रचूडस्य = कुक्कुटस्य, “कुक्याकुलाग्रचूडः कुक्कु-
टश्चरणायुध” इत्यमरः, भक्षणम् = भक्षणम्, तदेव पानकम् = पानं तेनैव,
ताम्रीकृतम् = रक्तकृतम् । छिन्नकन्धरम् = कृतमांशम् । सायङ्कालिक

पूरवा पर दृष्टक रहे, विन्दुकर्ता दुरै, भारत भूमि का आलिङ्गन करते हुए
से, निर्बाध हो रही संगर्भावयो को दिलाते और छटपटते हुए, क्षिप्र राशि
के बराने भीतर के रजोगुण को उगलते हुए से, सायंकालीन मेघ के
समान, मानों निरन्तर मुर्ग स्नाने के पाप से साज हो गये, कटे हुए सिर
वाले, हुए यवन को देख कर, हाँपूँक, घावाघाव देते हुए, रोमाञ्चित
होकर, गौरसिंह का आलिङ्गन कर के, आँनों के इछारे माथ से आहत

कञ्जुक-कटिबन्धोष्णोपादिकमन्विष्याऽऽनीनं पत्रमेवमादाय सगगः
स्वकुटोरं प्रविवेश ।

इति प्रथमो निश्वासः ।



सर्वं इव सजातमिति यान् । कटिबन्धः=बरनरहिता “पेटी” इति हिन्दी ।
खणीपम् = शिरोवेदनम् ।

निश्वास इति वाक्यविन्यासरूपे गद्यबान्धे निश्वासप्रश्वासा एव परि-
च्छेदका भवन्तीति परिच्छेदकानामङ्कसर्गाध्यायादिसंज्ञाः समुपेक्ष्य निश्वास-
संज्ञामेव शब्दसाधकार ग्रन्थकारः । यद्यपि वाण्यदिभिद्वन्द्वसंज्ञा गृहीता,
किन्तु सा श्लोकश्लोकादिवैषम्येक्षितेति सामरि सत्यात् । भवति वाच्यं प्राचीनं
पद्यम्—“श्रीद्विप्रकदंशं पुराणीति-व्यतिक्रमः आच्यतमः कवीनाम्” इति
ग्रन्थहृन्निष्ठपद्धत्या विष्णो ।

इति शिवराजविरचदवैजयन्त्या प्रथमनिश्वासविवरणम् ।



शूल्य द्वारा, मृत्क के बोये, बरखन्द और पगड़ी की तलाशी लेकर लाये
गये एक पत्र को लेकर, सब के साथ बरनां कुटी में प्रवेश किया ।

शिवराजविरच के प्रथम निश्वास का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।

ज्यमान-भारगमुदमादिहूनमिव निर्जोषी नगरहृदय-यत्न
 परं शोणित-महान आत्मेनान्न-मिग-मजोम-जिमिषादिहृदय-
 सायन्नन-यनाऽऽहम्बर-विभ्रमं मयन-नायनूर-मयान-यत्नेन
 साध्रीकृतं छिन्न-कन्धरं यवन-रक्तमयजोतय मयं समाधुषाई सं-
 मोदमय गौरसिद्धमास्त्रिय, धूमद्रमायाऽऽहमेन मृद्वेन मृद-
 लयाऽमेनेनि ध्वनिः । चिन्ताविषयः शब्दकल्प-लोचन-रति-
 पयमनुमयनपरमिधम्—“चिन्ताविषयद्वयोर्मये विन्दुमार्थं विरोधम्
 सवीर्यं दहते चिन्ता निर्जीव दहते चिन्ता ॥” यवनहनई विधिनति-निर्जीव
 भयनाम् = निष्पाण्णा गच्छताम्, अङ्गवन्धानाम् = शरीरमन्धानाम्
 चालने, परम् = निरतम् । शोणितमयानआत्मेन = दधिरसि
 लेन । अन्त-रिपतो यो रजोराशि = रजोगुणमयः, तमिवेक्षुमेषा-
 उद्गिरन्तम् = वमन्तम् । कलितः = धारितः, सायन्ननाय = शायनवत्,
 यनाहम्बरस्य = मेषविहम्बनायाः, विभ्रमः = विडम्बो येन वम् । स-
 तम् = हर्षदा, यत् ताम्रचूडस्य = कुक्कुटस्य, “कृकयाकुस्ताम्रचूडः कुक्कु-
 श्रणाशुव” इत्यमरः, भक्षगम् = अशनम्, तदेव पातकम् = पार्य तेनेव,
 साध्रीकृतम् = रक्तीकृतम् । छिन्नकन्धरम् = कृतप्रोवम् । सायकालिक-

पृथ्वी पर छटक रहे, बिछुडती हुई. भारत भूमि का आलिङ्गन करते हुए
 से, निर्जीव हो रही अंगसंधियों को दिलाते और छत्पयते हुए, दधिर रसि
 के बहाने भीतर के रजोगुण को उगलते हुए से, सायंकालीन मेष के
 समान, मानों निरन्तर मुर्ग खाने के पाप से व्यल हो गये, कटे हुए सिर
 वाले, दुष्ट यवन को देख कर, हर्षपूर्वक, शापाथी देते हुए, रोमाञ्चित
 होकर, गौरसिद्ध का आलिङ्गन कर के, आँखों के इशारे मात्र से आशुत

इत्युक्त्वा यवनान्-यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधोत-शेरिन-
पुण्यनगरम् समीपे एष प्रक्षालित-गण्डशील-मण्डलावाः, निर्मर-
धारिधारा-पूर-पूरित-प्रवह-प्रवाहावाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्त-
प्रसृत-गारि-माम-गुहा-गर्भं निर्गताया अपि प्राप्य पयोनिधि-
चुम्बन-पाशुराया, रिङ्गन्-तरङ्ग-महोदनायत्त-क्षल-भीमायाः,
दुगाडविदूर एव तिष्ठति स्वेति सम्बन्धः । अरञ्ज-जानं निश्चिनटि-स्थित-
ग्राम = लच्छन्म यद् यवनकुलं तेन भुज्यमानम् = धार्यमानम्,
विजयपुरस्य = लतामकनमास्य, अपीधरेण, प्रेषित = प्रहितः ।
इदं तात्कालिक-दिनमदर्शनमात्रफलं ननु सारिचिक्विषेचनया मनुष्योक्ति
वितेजसमिति चेदित्यम् ।

अमाया नीरं बह्वुर्दमिति सम्बन्धः । नदी निश्चिनटि-प्रक्षालि-
तानि = धोतानि, गण्डशीलानाम् = गिरिच्युतरपूलक्षिप्तानाम् मण्डलानि
यथा तस्याः । निर्मराणाम् = जलनिर्गमस्रोतानाम्, धारिधारापूरैः =
जलधारासमूहैः, पूरित = परिष्ठः, प्रवहः = प्रवहन्, प्रवाहो यस्या-
स्तस्याः । पश्चिमप्रासी पारावारः = समुद्रः "समुद्रोऽम्बरदूषणः पारावारः
हरितिरिति" इत्यादि, तस्य, प्रान्तं = निकट्यदेशे, यो गिरीणां ग्रामः =
समुद्रः, एव गुहाः = गडगणि तासी गर्भतः = मध्यान्, निर्गतायाः =
समुत्पन्नायाः । प्राप्य = प्राचामकः, यः पयोनिधि, लच्छुम्बने
चक्षुरायाः = चक्षुरायाः । पश्चिमसमुद्रान्निःसृत्य पूर्वसमुद्रं प्रविशया इति
वाच्योऽर्थः । एवमुक्तिः वाभात्यमणानां प्राप्यसर्वरूपसामानिकम्पदराशो-
पशलाय । रिङ्गनाम् = सञ्चलताम्, तरङ्गाणाम् = ऊमाणाम्, भङ्गः =

इषा स्वच्छाचार्य यवनो द्वारा द्योतित कीबापुर के अधिपति द्वारा
मेवा गया, पूना के समीप ही, पर्वतों से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थरों को पीने
वाली, सरतों की जलधाराओं से पूर्ण प्रवह प्रवाह वाली, पश्चिमी
सागर की लट्कती पर्वत भेजियों की गुहाओं से निकली हुई भी पूरा समुद्र
को घूमने की उतावला (पूरा समुद्र में गिने वाली), चंचल सरतों के
दूबने से उत्पन्न होने वाले ठीक-ठीक भँवरों के कारण मयकर लगने वाली

“रात्रिर्गमिष्यति सविष्यति सुप्रभातम्
 भास्मानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
 इत्थं विचिन्तयति कोरागते द्विरेके
 हा हन्त ! हन्त !! नलिनी गज उज्जहार ॥”

स्फुटकम् ।

कपटपदुरपदगलानः शिषं निमद्दोतु कीर्त्तिमर्जयितुञ्च विरिद्विविध
 मनोरथः भं मता शिषेनैव निगृह्यतो मृत्युपशगः कृतश्चेति द्वितीयनिश्चातः
 कथाभागोपक्षेरावाऽऽदौ “रात्रिर्गमिष्यती”ति पद्य समुल्लिखति । व्यापक
 च्यास्य नितान्तमरणा । द्विरेकपदस्य हा रेफो यस्मिन्निति व्युत्पत्त्या रेफ-
 यश्चनेन भ्रमरपदोपरथापनद्वारा मधुकरवाचकम्, योगरूढश्चेति नेतरसादृश-
 शब्दसदृशमुचिन्ता । भयति चात्र कोशः ‘द्विरेकपुष्पनिह्मन्तपद-
 भ्रमराजम्’ इति । परं तु तेनैव धर्मेण लाघनिकं मन्यन्ते, सेवा निरुद्धिरेव
 कारणत्वेनानिप्रता । अन्ततनानद्यतनोभयविधभरिपत्तयले लुट्प्रयोगस्यैवेष्ट-
 त्यन्वेऽरि पूर्व विदोषाविकथाया लुटि ततो विदोषान्वेषणमिति स्थलेर्धा-
 दौनु नासापुल्यविषयकध्वान्तिरप्यम्वनयेति शब्द । अपमरुलानः प्रता-

• श्रीः •

दिनीय निःशाम

“गत्त बं नेर्ग”, दुहायना प्रमान होणा, त्वं उदित होणा, कमल गित
 उठेंगे (भं र मैं करर निचल आऊँगा)” कमल-बली के अन्दर बन्द
 भोग यह मेष ही रहा था कि कमल को हाथी ने उठाकर खाया ।

इत्यनु स्वतन्त्र-यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुरापोश-प्रेषितः
पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गणहरील-मण्डलायाः, निर्गम-
वारिधारा-पूर-पूरित-प्रयत्न-प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्त-
प्रसूत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-
सुम्बन-पञ्चरायाः, रिङ्गन्-तरङ्ग-मद्रोद्गुहावर्त-शन-भीमायाः,
दुर्गादिकुर एव तिष्ठति स्वेति सम्बन्धः । अयमन्त-स्नानं विधिनति-स्नान-
न्तम् = लपटन्तम् यद् यवनकुलं तेन भुज्यमानस्य = शास्यमानस्य,
विजयपुरस्य = तत्प्रामकनगरस्य, अधीश्वरेण, प्रेषित = प्रहितः ।
इदं तात्कालिकमिदं प्रदर्शनमात्रकालं ननु स्मरित्वैव विवेचनरा समुपयोगि
विशेषमिति चेदित्ययम् ।

भंभाया भीरं बट्टवृषमिति सम्बन्धः । नदी विधिनति-प्रक्षालि-
तानि = घेतानि, गणहरीलानाम् = गिरिपुनरपूरुषिणानाम् मण्डलानि
यथा तस्याः । निर्गमरागाम् = कननिर्गमस्रोतसाम्, वारिधारापूरैः =
कनधारासमूहैः, पूरितः = भरितः, प्रयत्नः = वेगवान्, प्रवाहो यस्या-
स्तथाः । पश्चिमप्रासी पारावारः = समुद्रः "समुद्रोऽन्धरकृपायः पारावारः
मरित्वतिरि" इत्यमरः, तस्य, प्रान्ते = निकटपदेशे, यो गिरिगतो ग्रामः =
समूहः, तस्य गुहाः = गूढाणि तासां गर्भतः = मध्यान्, निर्गतायाः =
समुत्पन्नायाः । प्राच्यः = प्राच्यमक्षः, यः पयोनिधि, कुरुसुम्बने
पञ्चराया = चपकायाः । पश्चिमसमुद्रान्नि-यत्न पूर्वसमुद्र परिशया इति
वाच्योऽर्थः । एवमुक्तिः वाश्वात्मगमनीना प्राच्यसर्वरूपसामप्रतिकल्पपरा-
परासाय । रिङ्गताम् = सञ्चलताम्, तरङ्गाणाम् = ऊमाणाम्, भङ्गं =

इधर स्वेच्छाधारी यवनो द्वारा दामित बीकानपुर के अधिवसि द्वारा
मेका गया, पूना के समीप ही, पर्वतों से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थरों को ढोने
वाली, सरनी की अलधाराओं से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली, पश्चिमी
नागर की तटवर्ती पर्वत भंगियों की गुहाओं से निकली हुई भी पूना समुद्र
को घूमने की उठावली (पूना समुद्र में गिरने वाली), चंचल लहरों के
द्वारे ही उत्पन्न होने वाले मैकड़ों भैरवों के कारण भयंकर लगने

भीमाया नशाः, अनवरत-निपतद्बकुल-कुल-कुसुम-चन
 सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः वृ
 कुर्यन्; ह्य-हेपा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-वधिरीकृत-गज्युति-मध्यगाध्वनी
 वर्गः, पट-कुटीर-कूट-विहित-शारदाम्बोधर-विहम्बनः, निरपराध

छेदः, उद्धता. = उत्पन्नाः, ये आधर्माः = अम्भसा भ्रमाः, तैः भीमाया
 भयदाविम्बाः । “घोरं भीमं मयावकमि” त्वमरः । भीमायाः = ‘भीम
 नामवत्याः । अनवरतम् = सततम्, निपतनाम् = प्रच्यवताम्, बकुलकुल
 कुसुमानाम् = बकुल-समूहं सुमानान्, कदम्बेन = समूहेन, सुरभीकृतम्
 सुगन्धितामापादितम् । वगाहमानानाम् = प्रविशताम्, बलक्रीडा कुर्या
 मिति भावः, “वटि मागुरिस्तोषकाप्योदसगंघोरि” त्वत्तोषः, मत्तानाम् =
 दानभरितानाम्, मतङ्गजानाम् = करिणाम्, मदधाराभिः = दानवहैः ।
 कट्टकरणे हेतुः । हयानाम् = अश्वानाम्, हेपा = ध्वनिः, वधवि हेपा
 शब्दोऽध्वशब्दे, “अश्वानां हेपा हंषा च निःस्वन” इत्यमरान् तथा चाध्व
 शब्दोऽध्वशब्दे, तथापि विशिष्टवाचकपदानां सति विशेषणवाचक
 पदान्तरप्रयोगे किञ्चिन्मात्रमप्यस्य “सकचहेमादतपूर्णश्वैरि” त्वादिति
 इत्यनेन केष्वनिःस्वनवाचकत्वेन नादशब्दवैषम्यमिति पदितव्यम् ।

मध्यमिप्रतिध्वनं म मधिरीकृतं = प्रतितामर्प्यविकलकृतः
 गज्युतिमध्यग = गजशब्दान्तगलवर्त्ता, “गज्युतिः स्वा कोशदुग्मि” त्वमरः
 अध्वनीनवर्गः = वधिसमूहो येन सः । पटकुटीराणाम् = उपकारि
 काणाम्, ‘उपकाराकारिके’ त्वमाः, कूटैः = समूहैः, विहिता, शार
 दाम्बोधराणाम् = शारदाम्बोधनाम्, निर्वक्रत्वेन अनवर्त्तनामिति तात्पर्यम्,

अमा नश के निम्नर गिर रहे बहुत पुष्पों से सुशोभित जल को धव
 ल कर रहे मदमत हावियों की मदभाग से और भी अधिक तीव्र गन्ध
 य बनाता हुआ, घोंघी के दिनदिनाने की आवाज की प्रतिध्वनि से दो
 ढेर एक के घटिरी की बरग बना देने वाला, सफेद सेमों के समूह से

द्वितीयो निष्पातः

अभिजन-जन-पीडन-यान-रूप-तैरिष्य समुद्भूयमान-नीलचञ्च-
क्षितः, विजयपुरे-भगव्या-न्यतमः सेनानोः अपजलमानः प्रनाप-
दधिदूर एष शिववीरेण महाऽऽग्रवर्तनेन चित्रीद्विपुः सगेन-
पुति म् ।

अथ जगतः प्रमाजालमाकृत्य, कमलानि सम्मुद्रय, बोकान्
मोक्षीकृत्य, सबल-चराचर-वस्तुसमन्नाह-द्राक् सिधिलीकृत्य,
गुह्यलेनेष निज-गणहलेन पश्चिमाभागां भूषयन्, दारुणी-मेघन-
वेद्यम्वना-अनुकृतिपेन सः । समुद्भूयमाने-वर्त्मनोः, नीलचञ्च-
नीलवताकाभिः, उपलक्षितः-पुन । उत्पद्यते-निरपराधानाम् =
निर्दोषाणाम्, भारताभिजनानाम् = भारतीयानाम् । यथ पूर्वद्विपु
सदभिजनात्मनाऽऽन्यायते । तिष्ठति मम = अतिष्ठत् । 'लट् म्' इति
रवौ लट् । अन्यतमः = अन्येकेषां । आहवर्तनेन = पुनर्दुर्गोदरेण ।

अथ भगवान् भारतम् आगुपामगोचर एव संजात इति सादृश्यः ।
जगतः = संसारम् । प्रमाजालम् = द.मिगमूहम् । आकृत्य = आवृण्वत् ।
सम्मुद्रय-मन्त्रोच्च । बोकान् = चरवाकान् । "कोकध्वजध्वजश्च" इत्यमरः ।
मोक्षीकृत्य = दुःखिनो विधातुः । दारुणीः वरपर विरोधेन शोकः ।
सबलम्, चराचरम् = स्थावरजङ्गमात्मकम् । आगुपाम् = नेत्रणम् ।
समन्नाहम् = कार्यकरणम्, दर्शनयेति वाच्यम्, दार्ष्टिकम् = सामर्थ्यम् ।
गुह्यलेन = वर्णनूपणम् । 'गुह्यले वर्णनूपणम्' इत्यमरः । पश्चिमा

घाट के बाहरी का उपशम करने लगा, निरपराध भारतीय जनता के उत्तम इन
से उत्तम पारमार्थिक के समान न हो पाएगा भी से परधाना जाने का,
वीजापुर्णार्थ का प्रदान होना-मि अहम् भी, शिवम् के साथ पुनः
सुभा रोने की दृष्टा से, प्रत्यक्ष दुर्ग के मर्त्य हो पाएव जाने हुए हैं ।
तदुत्पत्ति, संसार के प्रकाश-समूह को लीव कर, कमलो को संकुचित
कर, पद्माको को शोकमय कर, सन्पूर्ण बह-येन जातु की दर्शन हर्ष
को शिथिल कर, अपने गुह्यले सदा सदा से दक्षिण दिशा को भव
कर करते हुए, बाहरी (दक्षिण दिशा और दक्षिण) के क्षेत्र के बाह्य

भीमाया नद्याः, अनवरत-निपतङ्कुल-कुल-कुसुम-कन्द-
सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-भक्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः कृ-
कुर्यन्; हय-हेपा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-वधिरीकृत-गज्युति-मध्यमाध्वनी-
वर्गः, पट-कुटीर-कूट-वह्नि-आरदा-मोघर-विहम्बनः, निरपराध-

छेदैः, उद्धता = उत्तन्नाः, ये आवर्णाः = अम्मसा भ्रमाः, तैः भीमाया
भयदायिण्याः । “घोरं भीम भयानकमि” त्यमरः । भीमायाः = “भीम
नामयत्थाः । अनवरतम् = सततम्, निरतनाम् = प्रचवताम्, कुलकुल-
कुसुमानाम् = अञ्जुल-समूह सुमानान्, कन्दम्बेन = समूहेन, सुरभीकृतम्
सुगन्धितामापादितम् । वगाहमानानाम् = प्रविशताम्, वल्कीली कुर्य-
मिति भावः, “वह्नि भागुरिरद्भोऽमवाप्योऽरुणसर्गघोरि” त्यल्होषा, मत्तानाम्
दानभरितानाम्, मतङ्गजानाम् = करिणाम्, मदधाराभिः = दानजलै-
रुद्वकरणे हेतुः । हयानाम् = अधानाम्, हेपा = ध्वनिः, वधरि हे-
शब्दोऽभ्युदये, “अदधाना देवा हेपा च निःस्वन” इत्यमरान् तथा चा-
शब्दोऽप्यारण्यमनपेक्षितम्, तथापि विशिष्टवाचकपदानां सति विशेषणवाच-
पदान्तरप्रधाने विशेषमात्रगतत्वात् “सहोर्वर्षमांघ्रतपूर्णोऽग्रेरि” त्यादि-
इत्यनेन केष्वनिःस्वनवाचकत्वेन नादवच्छिन्नवैशेष्यमिति वेदितव्यम् ।

मदध्वनिप्रतिध्वनिं च वधिरीकृतः = भुक्तिसामर्थ्यविकल-कृत-
गज्युतिमध्यम = न. शब्दवान्तरान्वयनी, “गज्युतिः ग्वा क्रीडावृत्तिरिति” त्यम-
अध्वनीनवर्गः = वधिकसमूहो येन सः । पटकुटीराणाम् = उपका-
राणाम्, “उपकारवर्गकारिके” त्यमरः, कूटे = समूहे, विहिता, शा-
दाम्भादराणाम् = शान्तिगणानाम्, निर्वज्येन ध्वनयन्नामिति तात्पर्यम् ।

भीमा नदी के निरन्तर गिर रहे बहुत पुरों से सुशोभित बल को ब-
हते हुए मज्जित शक्ति को मर्यादा से और भी अधिक तीव्र ग-
तवा बनाते हुआ, पोंकों के दिनदिवाने को आकाश की प्रतिध्वनि से
कोन तक के शक्ति को बढ़ा बना देने वाला, सफेद लोदी के समूह

धाकोपुर में स्वामी महानन्द मरस्वनी और काशी में स्वामी इमानन्द मरस्वनी को भी आपकी प्रतिभा का लोहा मानना पड़ा। बहुत ज़िद बोलने के कारण आपको हृद् रोष हो गया।

स० १९५३ वि० में हो ज़ारत स्वास्थ दिन पर दिन गिरता जा रहा था। बीछों के मना करने पर भी आप धर्म-प्रचार में संलग्न रहें।

मार्गशिरष कृष्ण १३ सोमवार स० १९५७ वि० का मन के तीन बड़े आप पञ्च तरंग को प्राप्त हुए।

स्वाम जी में विलक्षण प्रतिभा थी। वक्ता और साहित्यकार होने के अतिरिक्त आप मस्तरस के निम्नो, चित्रकार, पुष्पकार और संगीतज्ञ भी थे। पितार, हारमोनियम, जङ्गरस, नमतारस और मुद्रग बजाने में आप बड़े-बड़े गवैयों के काम काटने थे।

कविता लिखने में आपको अच्छी पति थी। 'इयस्नोत्र' आपकी रान भर की रचना है। एक पद्य में १०० श्लोक लिख सकने की क्षमता के कारण आपको 'पटिका शतक' की उपाधि मिली थी। आप 'सप्तशतान' भी थे।

साहित्याचार्य तो आप थे ही, न्याय, वैशाल, दर्शन और व्याकरण पर भी आपका अधिकार था। हिन्दी, संस्कृत और बंगला में धारा प्रवाहिक बोलना करने थे। अंग्रेजी का भी आपको ज्ञान था। थियोसोफिस्ट कर्नल अल्फाट और जार्ज ग्रियर्सन ने आपको वैयस्विता और वस्तुत्व शक्ति को अच्छी प्रदर्शना की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में लिख विषयव के कथानक पर 'मामवतम् नाटक' की रचना स्वामजी की असाधारण प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'शोध लेख' प्रणाली पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। पानिनि की मूल-पद्धति पर जानने 'आरम्भावा मूत्राधार' नामक हिन्दी व्याकरण लिखना प्रारम्भ कर दिया था, जो आपकी असामयिक मृत्यु के पञ्चस्वरूप अमूर्त गया।

नेव माञ्जिष्ठ-मञ्जिम-रञ्जितः, अनवरत-भ्रमण-परिभ्रम-क
इव सुपुष्पः, स्लेच्छ-गण-दुराचार-दुःस्वाऽऽकान्त-वसुमती-वेद
मिव समुद्रशायिनि निषिवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-संज्ञ
निर्वेद इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिह्नीर्षुः धर्म-ताप-तप इ
समुद्रजले सिन्धुसु, सायं समयमवगम्य सन्ध्योपासनमि

चासो, आशा = छाया, ताम् । “दिशन्तु ककुमः काशा आशा
हरितश्च ता” इत्यमरः, वरुणस्यैव वारुणी = पश्चिमा दिग् नक्षत्र, “तु
प्रत्यङ् च वारुणा” इत्यमरः । माञ्जिष्ठायाः = मण्डूकपम्पाः, “मण्डूक
इति हिन्दी, अयं माञ्जिष्ठः, स चासो माञ्जिमा = रक्तिमा, तेन रञ्जितः =
रक्तः । यथा बनो वारुणोः सुपु (पानानन्तरं शोणणी भवति तद्व
मास्त्रीऽपि वारुणी- (पश्चिमा) समगत्तरं शोणः संजात इत्युपेक्षा ।
अनवरत-भ्रमण-परिभ्रम-आन्तः = सततचक्रनसेदक्षिणः । सुपुष्पः =
सन्ध्योपप्लवः । स्वाभाविक परमाक्षरशक्तिः सेवधारणकृत्पनेष्टापत्त्येनो
लेशिता । स्लेच्छगणमाय = यवनसमूहस्य, दुराचारेः = भ्रष्ट-
चरणैः गौरवनमन्दिरस्यसनादिभिः, दुःस्वाकान्तायाः = चर्य-वितासः,
वसुमत्याः = वृषिभ्याः, वेदनाम् = प. राम । समुद्रशायिनि =
निष्ये । निषिवेदयिषुः = निवदयितुमिच्छुः । स इवेदुपेक्षा ।
दहसंज्ञस्य कक्षांश्च निवेदन-व-तादिभि भावः । वैदिकधर्मस्य =
सनादनवनीस्य, ध्वंसदर्शनेन = विनाश-लोभनेन, सञ्ज्ञागः =
चक्र-वधः, निर्वेद = वेगात् वर म इव । गिरिगहनेषु = पर्वतदुर्गमेषु ।
चिह्नीर्षुः = चक्र-वधः । निजानाम् = स्नातुमिच्छुः । सप्त दि तत्र

म. ४. ३ को दक्षिणा से काट, निजाना अथवा जाने के परिभ्रम से पकें से
जाने के इच्छुक, स्लेच्छी के मनाचारे से दुःस्वा वृष्ते का वेदना को गम्य
के का । ४. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०.
२१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०.

विधिगुः, "नास्मि कोऽपि सन्तुष्टे, यः सकण्ठप्रहं धर्म-पक्षिनी
वचनद्वयानयतिवाहनाद् भागन-नर्थाभिस्तारयेत्" इति चिन्ताऽऽ-
काञ्च इव कन्दरि-वन्दरेषु प्रोवाकितुभंगवान् भागवान्, क्रमशः क्र-
हरानवहाव, हृदय-परिपूर्ण-मण्डलः मंडल्य, इवेनीभूय, पोनीभूय,
पौनीभूय च गगन-पगनलाभ्यामुभयत्र आकम्प्यमाय इवाण्डाकृति-
मङ्गीकृत्य, कल्लि-कौतुक-रचनीकृत-सदाचार-प्रधारस्य पातक-
पुञ्ज-विच्छ्रित-धर्मस्य च सवन-गम-भारस्य भारतवर्गस्य च
भारतवन्, अन्धतमसे च जगन् पातयेन्, पशुशमगोपर पक्ष संज्ञातः।

नानुमिच्छति । भवगन्ध = दाता । विधिगुः = विद्वन् । सकण्ठ-
प्रहम् = कण्ठ प्रहता । धर्मवन् = दम्भे-वर्णः । अनुकन्दन् । यक्षियान् =
यक्षकान्नाम्नाम् । "वर्द्धितम्बी पक्षमादि" वि पः । प्रविधिगुः = प्रवि-
मिच्छुः । क्रहरान् = उन्मिरणान् । हृदयम् = भक्तिकविद्वन्,
सम्पूर्णम् = समस्तम्, मण्डलम् = विधि, पक्ष सः । पोनी-पक्ष्यादि
लभाकोक्तिः । अण्डाकृतिम् = गूढाण्डाकृतिरेषोदेवस्तमेति पक्षे तन्म-
उद्यमलोक्षेन प्रतापते । अथ सर्वभोग्येष्टा । कल्लिकौतुकम् = कल्लिगु-
कौतुकेन, कचलीकृतम् = विनष्टम् । पातकपुञ्जेन = धर्मधेन, विदु-
रितम् = पक्षवर्गस्य । नन्दरुतयेति भाषः । धर्मस्य = उनातन-
धर्मस्य । भारतवर्गस्य च भारतवर्गस्य "अर्थमर्थदेषादि"ति कर्मणि

समय हुआ ध्यान कर मन्त्रोपासन करने के हस्तुदसे, 'मेरे कुल में ऐसा कोई
भी व्यक्ति नहीं है जो धर्म-धर्मी बनने को इस पक्ष योग्य भूमि से गर्दनिर्वा
देकर निधाम जादर कर' इस प्रकार चिन्तित से होकर परत की गुना में
प्रवेश करने के हस्तुद से भयवान् पूर्व, क्रमशः तन्वी क्षिणी को छोड़
अग्ने सारे विभव को दर्शन योग्य बना कर, पहले सफेद, फिर पीले और
निराला होकर आकाश और पृथ्वा दोनों ओर से दबाये जा रहे से
अण्डाकार बन कर, कल्लियुग के प्रताप से विनष्ट सदाचार वाले, पापार्थि
से पहले वड़े धर्म वाले तथा यज्ञी से प्रकृत भारतवर्ग का स्मरण करते

ततःसंपृत्ते किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्यावृत्तम् इति
भुशुण्डी मन्त्रे निघाव निपुणं निरीक्षमाणः, आगत-प्रत्यागतः
विदधानः, प्रताप-दुर्ग-दीवारिकः, कस्यापि पार्श्वेष्वर्ध्वनिभि
भीषोन् । ननः स्थिरीमूढ पुरतः पश्यन् सत्यपि दीप-प्रकाशेऽपि
ममवशादागन्तारं कमप्यनवलोकयन्, गम्भीरस्वरेणैवमवादीत्
“कः कोऽयं भोः ? कः कोऽयं भोः ?” इति ।

अथ क्षणानन्तरं पुनः स एव पार्श्वनिराधायोति भूयः न
क्षेपमयांचन्—“क एव मामनुसरत्यन्तं सुसुप्तः समायाति बाधिरः ?”

पद्या । अन्यतमस्ये = गाढान्ते । ‘ध्वान्ते गच्छेत्तुमस्मि’ तदन्तः ।
पशुपामगोचरः = अदृश्यः । सुप्तमनसोऽन्तर्दृश्यः ।

हस्तिन्मु = शिबु । भुशुण्डीम् = भाषुपविशोचन् । “बन्क” इति हिन्
आगतप्रत्यागतम् = पाताशातन् । विदधानः = कुक्षिणः । प्रतापदुर्गम् =
तन्नाम्ना गच्छन्तुर्गम्, “किञ्च” इति हिन्दी, दीवारिकः = शरणाः । पार्श्वेष्वर्ध्वनिभि
क्षेप-धनिभि = चालककमगच्छन्तम् । अयनमसम् = धागजान्तम् “अ
मन्त्रे-पन्मम” इति मूलेन समासालोऽच्, तद्वत्, यद्वात् सामर्थ्यात्

मन्त्र की पार कन्वकार से टंकले हुए, भीषो से ओझात हो गए
उसके बाद, कुछ अंश हो जाने पर ओर दिखाओ के माना पूरा
उठने तक इस से जात हो जाने पर बन्क को ऊपर पर गत कर गे
से हुए उतर देने हुए और गल लगाने हुए प्रत्यक्ष दूर के शरणा
किता के पैर का आदर भी मुनी । तब मंद होकर, गांजने देम कर, दीप
का प्रकाश होने हुए, जो भूतकाल के कारण होने वाले को न देखकर
उत्तने मन्त्र पर से कहा “अरे यहाँ पर कोन है ? पर कोन है ?”

अतः तद्वत् हिन् बड़ी पैरों का आदर मूल पदा, हस्तिने नि
हिन्दी पर देना, “अरे पर कोन बड़ा निन्ता दुष्टे बवाव दिने हा माने
दिने बदन जगत् हा दे ?”

ततो "दौवारिक ! ज्ञान्ते भव, किमिति चर्यं मुमूर्षुर्गतिं वधिर
इति च वदसि ?" इति वक्तारमपश्येतेषाऽऽकर्णं मन्त्राधर्ममेदुग
वाजी । अथ "तत्किं नामासि अद्यापि भवता प्रभुस्यर्थागमादेशो यद्
दौवारिकेण प्रहृष्टिणा वा त्रिःशृष्टोऽपि प्रहृष्टमवदद् दृग्गम्य इति"
इत्येवं भावमाणेन हारणेन "ह्रस्वतामेव आगच्छामि, आगत्य च
नितिरलं निवेदयामि" इति कथयन्, द्वादशयर्षम केनापि भिक्षु-
घटुनाऽनुगम्यमानः, कोऽपि कापायवामाः, धृत-कुम्बो-पायः, भाम-
कृष्टिर्ललाटः रुद्राक्ष-मालिका-सनाधिग-कण्टः, भव्यमूर्तिः
संन्यासी दृष्टः । ततस्मयोरेधमधवालापः ।

मुमूर्षुः = मुमुक्षुः । मन्त्रस्वरं = गम्भीरनादेन, मेदुग = सान्द्र-
क्रिया । "सान्द्रक्रियस्तु मेदुर" इत्यमरः । अपश्यता = अनुरोधमानेन,
दौवारिकेणति शेषः । आकर्णं = धृष्टः । अद्यापि = गतः । भुनक्ति
यावत् । द्वारि तिष्ठति ॥ १५॥ स्वः = द्वारपालः, तेन । द्वारेणा = दामिनेन ।
नगरादिषु सद्यश्च जनतावागरकेण चौरनिवारिविधेति यावत् । वपायेण रक्तं
कापायाम्, वासो यव सः । त्रि = चारणम् । "द्विषिष्यति

उत्तरभागे उस दौवारिक ने दोहने वाले को न देखते हुए 'द्वारपाल !
ज्ञान्त हो, कबो बेकार नरणासुख और दरद करेते हो ?' यह गम्भीर
स्वर से क्रिय बार्णा सुनी । उसके बाद 'तो क्या आरको भनो तक महा-
गुन प्रियाजी का यह आदेश नहीं मादय है कि द्वारपाल या परदेशर
के तीन बार पुछने पर भी जो व्यक्ति उत्तर न दे उसे कोला मार दा जाय'
यह करते हुए द्वारपाल ने, 'धर्या करो मैं आ रहा हूँ, आकर साग दाक
बता दूंगा' यह करते हुए, चारद खत के किसी भिक्षु खनक के आने-आने
आते हुए किसी बायाय दम्पारी, कुम्हा पाय लिये हुए, द्वाक पर नम्य
लगाये तथा गले में बड़ाच का माला पहने किस भव्यमूर्ति संन्यास को
देखा । फिर उन दोनों से आरस से इस प्रकार वतचत हुई ।

संन्यासी—कथमस्मान् संन्यासिनोऽपि कठोरभाषमैति
शकरोपि ?

दीर्घारिकः—भगवन् ! भवान् संन्यासी प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घय
संन्याकुश्यते ।

संन्यासी—सत्यं भ्रान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि संन्यासिन
प्रसन्नचारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रदृश्या,
आत्मानमपरिचाययन्तोऽपि प्रवेष्टव्याः ।

कृतोऽयं" । इन्द्राक्षमालिक्या, सनाथितः = भूषितः, कण्ठो यस्य सा
आलापः = अन्योन्वसम्बोधनपूर्वकभाषणम् ।

तुरीयाभ्रमसेवी = चतुर्थाभ्रमवासी । "स संन्यासी योमी च न
निर्मिर्न चक्रिष" इति भगवद्वचनेन संन्यासिपदस्य न चतुर्थाभ्रमि-नीरि-
वारिमात्रकृतेति धनयता पदद्वयं निरोध्यविरोधमावेनोपात्तमिति विज्ञाः ।
अद्भुतम् = अच्युतम्, "ज्ञाम्यस्तादि"ति नुमिनयेयः ।

अपरिचाययन्तः = परिचयमरुतः । अपरिचितानपि प्रवेशयेति भावः ।

संन्यासी—तुम ॥ संन्यासियों को भी कठोर बचनों द्वारा अपमानित
कहे जाते हैं ।

दीर्घारिक—भगवन् ! आप संन्यासी हैं, चतुर्थे आभ्रम में हैं, अज्ञा
में आप को दण्डम का ता है, किन्तु आप महाशय का आवाज का उद्गारन
का माना करवा दिये बिना ही आ रहे हैं इसीसे हम आप पर
विमर्श कर रहे हैं ।

भगवन्—सच है, यहाँ तुम्हारा वह भ्राता है मैंने उमा कर दिया,
है किन बात से भ्रान्तितो, दण्डवादी तो, पण्डितो, निरालो, और बालकों से
कुछ भी मत पूछना, और यदि वे माना परिचय न दें तो ही उन्हें
भगवन् जान के भड़काते हैं ऐसा ।

द्वितीयो निश्वासः

दीवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् ! बहुतकम्, निरम, न
दीवारिका ब्रह्मगोऽप्याशां प्रतीक्षामहे । किन्तु यो वैदिकधर्म-
-ग्रही, यश्च संन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च संन्यासस्य
व्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च जीरप्रसविनोयनुच्यते
हृगदेश-भूमिः, तस्यैव महाराज-शिष्यवीरस्याऽऽशां वयं शिरसा
मः ।

संन्यासी—अथ किमप्यस्तु, पन्थानं निर्दिष्ट, आवां शिष्यवीर-
कटे विगमिष्यावः ।

दीवारिकः—अहमालव्यापि तम्, प्राप्ते महाराजस्य सन्ध्योपा-
सन्त्यसिनामित्यादिविषय संन्यासयेत्यादिविकेण यथाशुच-
पालयामा । अन्तरायाणाम् = दिधानाम् । शिरसा ग्रहामः = सर्वेषां
इत्यवः । हन्ता = निवारिता । “विधोऽन्तराया प्रादु”

अहमालव्यापि = इदमात्मनीयमपि नास्त्यर्थः । “अहंछस्वोः
प्रतिपेययोः प्राचां स्ते”ति क्वा प्रत्ययः । यथा पाकुन्तते “अहं हस्तिना,
ननु भवतीत्यामेव विषयकसंज्ञा शकुन्तते”त्यत्र, शिष्याकृतये “भालव्याह-
निद वधोर्वत्स दायनसारदि” त्यत्र च प्रतिशोऽयम् । प्राप्ते = पूर्वाह्णे ।

दीवारिकः—संन्यासी ! संन्यासी ! बहुत कर चुके, अब बर करो, हम
दीवारिक लोग ब्रह्मा की भाषा को भी परछाड़ नहीं करते, हम किन्हीं
वैदिक धर्म की रक्षा का प्रयत्न कर रहे हैं, जो संन्यासियों, ब्रह्मचारियों,
तपस्वियों, तथा संन्यास, ब्रह्मचर्य और तप के सिद्धों के नाटक है, बिन के
कारण ही कोट्टण देव की भूमि कोट्टण (बंरो को जन्म देने वाला)
कराहती है, उन्ही महाराज शिष्याओं की भाषा को शिरोधार्य करते हैं ।
संन्यासी—अच्छा जो कुछ ना हो, हमें बहुत शिष्टाभो, हम बंर
शिष्या के पास जाना चाहते हैं ।
दीवारिक—उसका नाम जोन ल विवे, आरकेसे लोगों के लिए

मनममये भगवन्मानो योग-ममयो भवति; न तु मयो ।

सन्ध्यामी—ना-ह कोटि न विजयति मयो ?

दीर्घारिक—(कथम्) कोटि-कर्म न विजयति ? सांसारिक
या प्राज्ञ-विषयकायां वा भावना या योगशाला, न तु नह
दशाः, ये गुप्तो गृहो वा दारा इ दारम्—इ-त एवकमेव ननेत्रने
धर्मिनो यव यव विरगम् ।

सन्ध्यामी—(स्वयम्) राजनीति-निष्ठा-शिक्षणः । मर
दीर्घारिकता—योग्य ज्ञान दारपालः स्वाध्यायः । परोक्षिन्ने
नमस्कर्मन विषये पुनः परोक्षिन्ने नायम् । (प्रथम्) दीर्घारिक
इत आयाह, किमापि नर्त्तनं कथयिष्यामि ।

दीर्घारिक—(तथा कृत्वा) कथयाम् ।

तुम्ही=भक्तवत्सलम् । निष्ठाभाजनविनि ममत्रयम् । धर्मितः=म
राजनीती, निष्ठा=निष्ठाः । “प्रवर्त्तने विपुलानिधिशिष्टेन
शिक्षिता” इत्यमरः । दीर्घारिकता=दारपालकर्म । परोक्षिन्ने=ना
करिष्ये ।

समय प्रातःकाल महाराज के सन्ध्योपासन के समय होता है, न कि रात

सन्ध्यामी—तो क्या रात में कोई नहीं आता ?

दीर्घारिक—(विगड़ता हुआ) ‘कोई कैसे नहीं आता ? महाराज
परिचित लोग, परिचय-यव प्राप्त लोग या आमन्त्रित लोग, आते हैं,
कि आप के से लोग जो तुम्हें लिये दरबार से दरबार’—यह करते
बहुते मानो उसके तेज से घबराकर बह बाच में हा रुक गया ।

सन्ध्यामी—(अपने मन में) शिक्षा को राजनीति में कुछ है
उन्होंने पहरेदारों के योग्य ही दारपाल नियुक्त किया है । यद्यपि मैं इन
परिक्षा ले चुका हूँ, फिर भी मैं इसकी एक विषय पर पुनः परिक्षा देना
(प्रकाश में) दारपाल ! इधर आओ, कुछ तुम्हारे चान में कहूँगा
दीर्घारिक—(वैसा ही कर के) कहिये ।

द्वितीयो निश्वासः

सन्वासी—निरीक्षस्व त्वमधुना दीवारिकोऽसि, प्राणानगण-
जीविका निर्वहसि, त्वं सर्वं वाऽयुनं वा मुद्रा राशीकृताः
दीवारिकः—आम्, अग्रे कथ्यताम् ।

सन्वासी—वयस्य संन्यासिनो वनेषु मिरिकन्दरेषु च
वचनम्, सर्वं रसायन-तत्त्वं विद्याः ।

दीवारिकः—स्यारंयम्, अग्रे अग्रे ?
सन्वासी—तद् यदि त्व मा प्रविशन्तं न प्रातर्हन्ते तदधुनेव
परिष्कृतं पारङ्-भक्ष्यं मुन्य इदम् ; यथा त्व गुञ्जामात्रेणापि
हापञ्चाक्षरसङ्घपाक-मुद्रापरिमितं नास्ति जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः ।

निरीक्षस्व = अवलोकय । त्वम् = निस्सर्वः साधारणदीवारिकः कलमेन
जीविका निर्वहसि जनिः । अत एव तत्त्वयोगः, अन्यथा
‘निर्वहस्वे’ स्तेनैव यत्पर्यन्ता स्यात् । रसायनानाम् = ताद्यादीनां
मुक्तादिनिर्माणशक्तिनतामोषविनिर्माणान्, तत्त्वम् = सामर्थ्यम् ।
प्रतिहन्त्येः = प्रतिवारयेः । ‘रुधिरं आवरणे’ इत्यस्य विधौ सिरि
रुधम् । परिष्कृतम् = सुमाधितम् । तुला = पलाणां घटनम् । “तुला

सन्वासी—देवी इह सद्यस्व तुम दारपाक हो, माण्यो का बाबी लगा-
कर बीजन निचांद करते हो, तुम क्या हजार दस हजार रुपये एकट्टे पा
॥ अंगे यद् द्विती भी तरह समझ नहीं है ।

दीवारिक—हो, आगे करिये ।
सन्वासी—आर हम सन्वासी लोग वनों और पर्वत-कन्दराओं में
बिचलते हैं, हमें साथ रसायन-रहस्य पारस्य है ।

दीवारिक—हो सकता है, आगे और आगे करिये ।
सन्वासी—तो यदि तुम मुझे अन्दर जाने से न रोको, तो मैं अन्त-
तुम्हें छोड़कर पारे की भस्म दे दूँ, जिससे तुम रक्तों भर से भी लग-
ना और तबि को सोना बना सकोगे ।

[दौवारिकः—हंहो ! कपटसंन्यासिन् !! कथं विश्वासवात स्वामिबद्धनश्च शिक्षयसि ? ते केवनान्ये भवन्ति जार-जातान् ये उत्कोच-छोभेन स्वामिनं वद्ध्यित्वा आत्मानमन्वतमसे पातयन्ति, न ययं शिवगणास्तादृशाः । (संन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इतमु सत्यं कथय कस्त्वम् ? कुत आयातः ? केन वा प्रेषितः ?)

संन्यासी—(स्मितेव) अथ त्वं मां फं मन्यसे ?

दौवारिकः—अहं तु त्वामस्यैव समेनस्याऽऽयातस्य अपञ्चलानस्य—

संन्यासी—(विनिवार्य मध्य एव) धिगु धिगु !

दौवारिकः—कस्याप्यन्यस्य वा गूढचरं मन्ये ! तदादेशं पालयिष्यामि प्रभुवर्यस्य । (हस्तमाकृष्य) आगच्छ दुर्गाध्यक्ष-समीपे,

स्त्रियां पलशतमि” त्वमरः । ताम्रम्, धातुनाम । जाम्बूनदम् = मुवर्णम् ।

जारजाताः, “अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तारि गोलक” इति कोशात् पत्न्यौ जीवति परपुरुषेण समुत्पादिता जारजाता इत्युच्यन्ते, अर

दौवारिक—अच्छा जी ! क्यों रे कपटी संन्यासी विश्वासवात ओ स्वामी को छलने की शिक्षा देता है ? वे हरमन्त्रादे कोई दूसरे ही होते हैं जो भूम के लालच से स्वामी को छल कर अपने को नरक में डालते हैं । महाराज शिवाजी के सेवक हम लोग ऐसे नहीं हैं । (संन्यासी का हाथ पकड़ कर) अच्छा, अब सब-सब कह तु कोन है, कहाँ से आया है, पा तुझे किसने भेजा है ?

संन्यासी—(मुस्कराता हुआ सा) अच्छा तुम मुझे कोन समझते हो

दौवारिक—मैं तो तुझे इसी सेना सहित आये हुये अफजल खाँ का

संन्यासी—(बीच हो में रोकाबर) छिः छिः !!

दौवारिक—या किसी दूसरे का गुप्तचर समझता हूँ, अतः मैं महाराज के आदेश का पालन करूँगा । (हाथ खींच कर) इधर आओ, दुर्गाध्यक्ष

की की मृत्यु के समय उनके पुत्र प० राधाधुमार व्यास की
 व की थी और राधाधुमार की की मृत्यु के समय उनके पुत्र
 धुमार की १ वर्ष के थे। यही कारण है कि व्यासजी की
 इतिहास नहीं हो गई है। व्यासजी के उद्भूत साहित्य के
 अध्यायन की ओर बिद्वानों को ध्यान देना चाहिए।

शिवरात्र-विजय

'शिवरात्र-विजय' शम्भुश बाधूमर का प्रथम ऐतिहासिक उन्मास
 । उन्मास अध्यासों का प्रकरणों में लिखा जाने वाला कल्पित रसपुत्र
 और विवेचनात्मक गद्य रचना का यह प्रकार है—जो उन जीवन के परस्पर
 सम्बन्ध चरित्रों और कथों का प्रतिनिधित्व करता है। सस्कृत के गद्य
 कालों की कमीटी पर गद्य उतरते हुए भी 'शिवरात्र-विजय' बल्लुन
 है उन्मास ही। शिवरात्र-विजय का वाक्य क्रियात्मक, अलकरण
 और गद्यरत्न बाधूमरों में प्रभावित जान पड़ता है, किन्तु कल्पित
 की दृष्टि में यह रचना बलि बाधु के उन्मासों के मिलने ही
 निबन्ध है उनकी ही गद्यन के गद्य कालों से दूर। 'दशधुमार
 चरित्र' का कथानक काल की पृथिवी मा है, एक आध्यात्म का
 भाव इसके का प्राप्ति है। इसके विरोध 'शिवरात्र-विजय' का
 कथानक उन्मास ही पुनित ललित की भाँति है। 'दशधुमारचरित्र'
 का कल्पित्य वीरगणिक कथानक जैसा है, अर्थात् उनमें एक कथा
 कथागत है और एक या एकाधिक धोना। अपने से पूर्ण अनेक स्वतंत्र
 लघु आध्यात्मिकाएँ मिलकर एक बड़े आध्यात्म की जग्य देती है।
 'शिवरात्र-विजय' का कल्पित साधारण उन्मासों जैसा है, लेखक
 मानावर्ण बनाकर पाठकों की अनेक चरित्रों के बीच में बिठा देता है,
 जहाँ से लक्ष्य दर्शक की भाँति उनके क्रिया-बलार देखने हैं। 'शिवरात्र
 विजय' में दो स्वतंत्र कथा-धाराएँ समानान्तर बहती हैं एक का नायक

॥ अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते ।

अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते ।

अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते ।

निर्वाचनम् । उक्तोक्तो हिन्दा "बुद्ध" इति, "परिचयः" इति बोध्यते ।

अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते । अथापि तस्य स्वयं चर्चा विद्यते ।

के समर्थ चर्चा, वह बोध-समर्थक और मुझे परस्पर कर मुझरे साथ
बैसा उचित समर्थके बैसा व्यवहार करेंगे ।

उसके बाद संन्यासी ने "लोह दानि, मैं फिर नहीं आऊंगा, ऐसी
बात नहीं कहूंगा, आप बड़े उदार हैं, दया कीजिये, दया कीजिये" ऐसा
हजारी का कहना, या दीर्घादि फिर या उसे बीच ही से चला ।

तदनन्तर द्वारपाल के चारक पर रत्ना राज्यतेन में बन्द रहे प्रसर
प्रकाश करते द.व.क के समर्थ वर्तमान पर संन्यासी ने कहा, 'द्वारपाल ।
कहा मुझे मुझने कभी पहले भी ऐसा है ?' तब द्वारपाल ने पुनः उसे गौर
में देना कर, उसके समर्थ स्वर, आरक्त नेत्र प्रान्त वाली आँखों, गोरे
रंग, उमड़ रही नई कपानी और निर्भीक तथा मनोहर

सौलज-किंग-कहंश-करप्रहमपहाय, सलज्ज इव च नग्रीभूय, प्रम-
मभ्रुवाच—“आः ! कथं श्रीमान् गौरसिंह आर्यः ? अन्यतामनुचित-
व्यवहार एतस्य ग्राम्य-वराक्रम्य” । तद्वधार्थं तस्य पृष्ठे इमं
विन्याम्यन् सेन्यामिरूपो गौरसिंहः समवोचन्—“दीवारिक ! मया
पट्टगः परोक्षिनोऽमि, मानोऽसि यथायोग्य एव परे निवृत्तोऽपि
येति । त्याहमा एव प्रभूजां पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्वयत्र
वित्तयन्ते । तव प्रामाणिकतो जानीत एवाग्रभयान् प्रभुवर्ष्यं,
परमहमपि विशिष्य कोनैविष्यामि । निर्दिश साधन् कुत्र श्रीमान् !
किञ्चानुनिष्ठति ?)

ततः पुनश्चाश्लेदीवारिकस्य किमपि कर्णे कथितमाकर्ण्य

भृगुगच्छा = आशुभस्तोत्रस्य, ममुलोलनेन = उत्थापनेन, यः किमः =
चिह्नमिति, तेन कहंशस्य = कठोरस्य, करस्य, मद्ः = महाम् । गौरसिंहः
कथानागं पूर्वं गौरसिंहनाम्ना समाकतोऽपमेवेति न विस्मर्तव्यम् ।

उत्ते पदवाच निता । पदवाचने ही, कन्क उठाने से निगमे महुं पद गये
के ऐसे कठोर हाथ को गन्तामा से हटाकर अर्थात् संस्कारों का हाथ
छोड़कर, महामा मा, निः शुद्धकर प्रणाम करता हुआ बोला—“भरे !
अमान् श्रीसिंह, मानः । इस बेकदरे मेरे के अनुचित व्यवहार को
क्षमा करिएगा । यह मनुकर उमका पेट टोकेने हुए गन्तामी से
कहा श्रीसिंह हो । —

दीवारिक : मैंने तुम्हारा बड़े कर परीक्षा की है, मैं तुम्हें समझ गया,
तुम गौरसिंह के वंश की निवृत्त भिये गये हो । तुम्हारे पैरों की गता
मिने व तुम्हारे के रूप होन है तथा इहंशक और वाजिक दोनों में
सम्मान गये है । तुम्हारी प्रामाणिकता को ही पूरा विश्वास जानने हो
है, निः मा मैं इससे निष्ठ हो से बहिन । कलमे, मागाव बर्त है
कोर कल वर गे है ।

तद्वधार्थं इत्येव ने हाथ को हटकर श्रीसिंह के कान से कुछ कहा, उसे

महाभारतमण्डलाऽऽमण्डले, द्वितीयां निरूप्य, मयत्वेन तं प्राची-
विद्याम् ।

मयत्वेनैव “इह ह्येव गीर्गमिह ! इतिविद्, इतिविद्, (पराय
ह्येवमिह, अथि कुशलं कल्पयामि ? अथि कुशलमिहमव गदयामि ?
अथिद्रोहमव गदयामि निवेदय नृपम् ? अथि वभिभक्तनो वृत्तान्तः ?”
इति कुशुमान्तरावर्धनं पौरव-वर्धनमेव मिश्रतां मृदुना वचनमनेन
नवभक्त्या निवेदीयेताऽऽदिशमायः, आह्वयतामनायः, त्रिः प्रणम्य,
अन्तराह्वयतामनायः-कुशु-वर्धनं मयत्वेनैव, वही मयत्वेनैव “अगवन् !
अगवन् कुशलं प्रभूतामनुग्रहेणाभाकमगितानाम्, अद्वीह्य महा-
प्रते च मां मय वदं धाम् वधनान्तरावर्धनं इत्येव मया प्राप्यते भगवान्
मृगतायः । मृगतां वधनम् को ज्ञानावधनममये वदत्यः अगवन्तः
अगवन्तः । कुशु-वर्धनम् = सेनितम् । अगवन्तः इति वाक्यम् । धाम्, कुशु-
वर्धनं, माहो वीरवर्धनः । मय = पुत्रता, “पुत्रतां प्रवतन्तपुत्रता-
विरमन्तः” इत्यमरः । अगवन्तममये = मयत्वे । “आमन्तः” इति

गीर्गमिह आरका द्योतनं करुणं वाहते हे । वह सुनकर, महाभारतमण्डल
के हृद-भङ्ग विवाही के ‘अगवन्, हे आभो, हे आभो’ कहने पर,
मय हार कीट कर सुनत उन्हे के आवा ।

उन्हे देखते ही, “इपर, इधर गीर्गमिह ! मैत्री वैद्य, कथा समय बाद
कील पर, कुशल से तो हो । सुधारे साथ कुशल से तो हैं । तुम लोग
मैं कु महाभक्त को निराहने तो हो न । क्या कोई नया समाचार है ?”
इस प्रकार पुत्रवत्ता सी करने हुए, अमृतप्रवाह से सींचते हुए से, मृदु-
वचनों से महायज्ञ विवाही द्वारा आदर पाते हुए और पूछे जाते हुए
गीर्गमिह ने तान बार प्रणाम कर, जिस पर अन्तराह्वय मिश्र बैठ के उसी
आवाह पर बैठ कर, हाथ जोड़ कर कहा, “अगवन् ! प्रभुवर्धन के अनुग्रह
से हम सब लोग पूर्णतया सुखी हैं और भगवान् विद्वन्मय से सब
यह प्राप्यता किया करते हैं कि स्त्रीकुल महायज्ञ में कोई विघ्न न

वृत्तान्तः—यत्ने दृष्टान्तागतं स्वच्छन्दानामुच्छन्दानामुच्छिन्न-
मच्छिन्नानां भेदोद्भवानाम्” इति कथयामास । तत्र प्रत्ये-
मेयमभूदन्त्याः ।

शिवश्रीः—अथ कथयतां तौ वृत्तान्तः ? का न स्यात्
आमन्महाप्रतापस्य परम्परायाः ?

गौरसिंहः—मगधेन सधैः सुमिद्वयं, प्रतिगद्यव्यञ्जनात्मकं
कृत-सनातनधर्म-वशा-महाप्रतापं धारित-मुनि-वेत्ताणां वीर्यशालं
साधमाः सन्ति । प्रत्याभमरूपं पत्नीयेषु गोपयित्वा स्थापित-
परदशनाः स्वह्नाः, पटलेषु निरोन्मायिताः शक्यः, कुम्भपुष्प-
स्थापिता मुमुक्षुश्च समुन्लसन्ति । उच्छ्रम्भ, शिञ्जम्भ, समिद्वयं

हिन्दी । अद्यतनशब्दो वैयाकरणैः परिभाषितो वस्त्रिष्वये अनौठाभ-
पारिभाषागमिरस्यर्धचरमावयवरूपे—न तदभिप्रायेण प्रयोग इति
वेदितव्यम् । स्वच्छन्दानामित्वाभ्यं ग्लेश्चान्तेऽनुप्रासः । महाप्रतम् =
महान् नियमः । उच्छ्रः = पतितकणानामेदृश्यो ग्रहणम् । शिञ्जम्भ =
क्षेत्रादौ स्वामित्वज्ञानां कणिष्ठानां ग्रहणम् । “उच्छ्रः कणश्च आदानं कनि-

ष्टो, नया कहने लायक और सुनने लायक समाचार आबकन निरंकुश,
उच्छ्र, शिञ्ज और सदाचारविधान दुष्ट श्रेष्ठों के बुराचार के सिवा और
क्या है ?” तदनन्तर उनकी बातचीत इस प्रकार हुई ।

शिवश्रीः—अच्छा बताइये हमारे महाप्रतापियों का क्या हास-वाक्य
है ? उनकी व्यवस्था कैसी चल रही है ?

गौरसिंहः—मगधन् ! सब ठीक हो गया है । प्रत्येक दो कोस के बीच
में सनातन धर्म की रक्षा का महाप्रत स्थापित किये हुए मुनिवेषधारी वीरों
के आश्रम हैं और प्रत्येक आश्रम में छप्परी की ओरियों में सैकड़ों त-
बारें, छप्परी में शक्तिर्यो (शस्त्रविदोष) और कुशों के ढेर में बन्दूकें
छिपा कर रखी हुई हैं । सेतों में गिरे अनाज के दानों और बाकियों की

रणम्, इह दो-पर्यन्तेष्वगम्य, भूर्जपत्र-परिमार्गणम्, तुमुमायच-
यनम्, तीर्थाटनम्, सप्तहम्य च ध्याजेन, केचन जटिलाः, परे
मुण्डिनः, इतरे कापायिजः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहुवः
पटयो घटयभराः सञ्चरन्ति । विजयपुरादुद्दीवाशऽऽगच्छन्त्या मन्त्रि-
काया अचलः स्थितं पर्यं विद्यः, किं नाम एष यवनहनकानाम् ?

शिबपोर-माधु माधु, कथं न स्वार्थम् ? भारतवर्षीया यूयम्,
तत्रापि महोच्चलजाताः, अग्नि चेद् भारतं वर्षम्, भवति च
त्याभायिक एषानुगमः । सर्वेभ्योऽपि स्वदेशे, कश्चिन्नमश्च यौष्मा-
कीणः मनामनो धर्मः, तमेते जालमा समूलमुच्छिन्दन्ति, अस्ति च
“प्राणा यान्ति, न च धर्मः” इत्यार्याणां एव सिद्धान्तः । महात्मो

शाक्यर्षेण “सिद्धि” इत्यमरः । इह्या = निष्पादय, पर्यन्तेष्वगम् = सर्वतो
मार्गणम्, तस्य । जटिलाः = ब्रह्मपुराः । “लोकादि-वामादि निष्ठादिभ्यः
एनेचः” । कापायिजः = गैरिकवचनाः । मन्त्रिकाया अपि, किमुत
मनुष्याणाम्, कैमुत्यमुक्ता लोकोक्तिः । अचलः स्थितम् = मानसे विच-
मानम् । जालमा = अभिवेकिनः । “ब्राह्मोऽसमीक्षकारी स्वादि” इत्यमरः ।

बीनने, समिधा लाने, इगुद (विगोट वा मायकांठनी के बीज) लोचने,
भूर्जपत्र लोचने, फूक चुनने, तीर्थाटन करने तथा सतर्ग करने के बहाने, कोई
बड़ा भारण किये, दूसरे तिर मुहाये, कुछ गेदभा कप पहने, कुछ मौनी
बने, और अन्य ब्रह्मचारी बेग धारण किये, अनेक घनुर गुमचर बालक
एक रहे हैं । हम बीजापुर से उठकर यहाँ आने वाली गदगो तक की
आन्तरिक बाती की जानते हैं, इन कुछ शक्ती की तो बात ही क्या है !

शिवाजी—शाशय, शाशय, ऐसा कैसे न हो ! तुम लोग भारतीय
हो, उसमें भी उद्यम मूल में उत्पन्न हुए हो, यह भारतवर्ष है, अपने
देश पर सभी का स्वाभाविक प्रेम होता है, आपका सनातन धर्म पवित्र-
तम धर्म है, उसे ये आदिम बह से उत्साह रहे हैं, और आपको का, ‘प्राण
मले ही चले जायें, पर धर्म न जाय’ यह एव सिद्धान्त है । महापुरुष

रघुवीर सिंह (राम सिंह) है और दूसरे के मित्राजी, छिन्नु ये दोनों कथायें भी निम्नान्न अन्य निम्नेष्ट नहीं हैं ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार को सामाजिक उपन्यासकार को ओझा बन स्वनन्वना मिलनी है । अनीत के अनुभव ही उसे चरित्रों और घटनाओं का मण्डन करना पड़ता है । प्रधान चरित्र हमारे इतने निश्चिन्त होते हैं कि उनका चित्रण करते समय लेखक की कल्पना के लिए किसी प्रकार अवकाश नहीं रह पाता । उपन्यास की कथावस्तु बहुधा होने के कारण कौतूहल तत्त्व पर भी आपात पहुँचना है । ऐतिहासिक कथ्यों का बहुत अधिक ध्यान रखने पर रचना ऐतिहासिक उपन्यास न रहकर औपन्यासिक इतिहास हो जाती है और ऐतिहासिक कथ्यों की अवहेलना लेखक का अज्ञान प्रकट करती है । इन्हीं कारणों से ऐतिहासिक उपन्यासकार अनेक प्रासंगिक कथाओं और काल्पनिक चरित्रों की सृष्टि कर लेते हैं । साहित्यकार का मूल्य इतिहासकार के मूल्य से भिन्न होता है । इतिहासकार वस्तुस्थिति देखता है और साहित्यकार सभासता ।

शिवराज-विजय के मित्राजी, मूषण, मात्यभोज, अकाल साँ (अनजल साँ), शास्त्रा साँ (शास्त्रिण), कुमार मूजज्जम (मोज्जिम), जय सिंह और यमकर्त सिंह ऐतिहासिक चरित्र हैं जोर रघुवीर सिंह (राम सिंह), सीवर्षी, पुरोहित देवगर्भ (बीर सिंह), ब्रह्मचारी गुरु, मोर सिंह, दयाल सिंह, कूर सिंह, बदरहीन (बदरदीन), बाई साँ (बाण्डुमान) आदि कल्पित ।

ऐतिहासिक चरित्रों के श्रिमा-कथनों और आचरण-व्यवहार का चित्रण इतिहासकार की दृष्टि से किया गया है । ऐतिहासिक मान्यताओं का ध्यान रखते हुये ध्याय भी ने ऐसे स्थल चुँड़ निकाले हैं जहाँ उनकी प्रतिभा को कुछ खेञ्जे का अवसर मिल सके ।

औरंगजेब की दुहिना रोशनआरा (रसनाली) के स्थान पर इतिहास-कार बीजापुर की राजकुमारी का कदो बनाना लिखने है । नायक की

सर्वे च विजयपुराधोऽनुग्रामबलोऽप्य, “किमेतन् ? कुत एतन् ? कथमेतन् ? कथमायेतन् ?” इति जिज्ञासमाना मोत्कण्ठा चित्तस्थिरे । गौरसिंहस्तु शिष्यबोम्भापि सत्त्वान्नि-चरित-शुभ्रपामयगत्य मन्त्रिष्य सर्वं वृत्तान्तमवोधन् । तस्मिन् “दृश्यताम्, प्रसारयन्तान्, पश्यताम्, कथयताम्, किमिदमिति” पृच्छति शिष्यघोरे गौरसिंहो व्याजहार-
भगवन् । सर्पाकारैरधरेः पारस्य-भाषाया लिखितं पत्रमेत-
दस्ति । एतस्य साराणोऽयमस्ति—विजयपुराधोऽः अविपितमपञ्चल-
ग्यानं सेनापतिं सम्बोध्य लिखति यन्—“वीरधर ! महाराष्ट्र-गजेन
मह योद्धुं प्रयितोऽस्मि मा स्म नूरुद्धनाम्तरायभयं विजये ।
शिषं युद्धे जेष्यसि चेन्, पद्मयां सिंहं जिग्यान्सीति मस्ये, किन्तु

विजयपुरम् = ‘बंजापुर’ इति भाषायां प्रसिद्धं नगरम् । चित्तस्थिरे =
स्थिरताः । “मन्त्रयन्त्रिष्यः स्व” इत्यात्मनेपदम् । शुभ्रपाम् = भ्रंशुमिष्टाम् ।

सर्पाकारैरधरेः । सोपरासम् । पारस्यानाम् = पारस्यभाषायां,
भाषायाम् = भाषा । “पारसा भाषा मे” इति हिन्दा ।

सभी लोग, बंजापुर के मुल्तान का मुहर देखकर ‘यह क्या है ? कहाँ से मिला ? कैसे मिला ? किससे मिला ?’ यह जानने की अत्यधिक उत्सुक हो उठे । गौरसिंह ने, शिष्याओं को ना उसका प्राप्ति का वृत्तान्त जानने की उत्सुक जानकर संक्षेप में साथ वृत्तान्त यह सुनाया । तदनन्तर, वीर शिष्याओं के ‘दिग्वारये, लोलिये, पदिये, कदिये यह क्या है ?’ इस प्रकार पूछने पर गौरसिंह बोला—

भगवन् ! यह सर्पाकार अक्षरों (अरबा लिपि) से पारसी भाषा में लिखा गया पत्र है । इसका सारांश यह है, बंजापुर का मुल्तान, अपने द्वाग भेजे गये सेनापति अफजल खाँ को सम्बोधित करके लिखता है कि “वीरधर ! तुमने महाराष्ट्र के अविपति शिष्याओं के साथ युद्ध करने लिये प्रस्थान किया है, अतः तुम्हारी विजय में किसी प्रकार का उपस्थित हो, यदि युद्ध में तुमने शिष्याओं की चंठ नि

सिंहद्वननापेक्षया जीवतः सिंहस्य वशीकार एवाधिकं प्रशम्यः । तस्य
यदि छलेन जीवन्तं शिवमानयेन्नद्वयोरमुद्वयोपाधि-दान-सह-
कारेण तव महती पदवृद्धिं कुर्याम् । गोपीनाथपण्डितोऽपि मया
तव निकटे प्रस्थापितोऽस्ति, स मम तात्पर्यं विशदीकृत्य तव निकटे
कथयिष्यति । प्रयोजनवशेन शिवमपि साक्षात्करिष्यति” इति ।

इत्याकर्णयन् एव शिववीरस्य अरुणकौशेय-जाल-निषङ्गी
मीनाविव मयने मजाते, मुखञ्च बाल-भास्कर-चिम्ब-विडम्बता-
माललम्बे, अधरश्च धीरताधुरामधरीकृतवान् ।

‘शिवं पुढे जेप्यसि चेत् पद्मचा सिंहं जितवानसी’ति निदर्शनालङ्कारः ।
मंस्ये = ज्ञास्ये । प्रशस्यः = श्लाघ्यः । प्रस्थापितः = प्रेषितः । विशदी-
कृत्य = स्पष्टीकृत्य ।

अरुणम् = लोहितम्, यत् कौशेयस्य पट्टास्यस्य, जालम् = आनाय,
तेन निषङ्गी = रक्षणी । मीनाविवे = पुष्पा । कोषासयने कोहिते अभूतामिव
वाप्योऽर्थः । बालभास्कराय = नवोदितसूर्यस्य, यद्, चिम्बम् = नितान्त-
लोहितं मण्डलम्, तद्विडम्बनाम् = तदनुकृतिम् । माललम्बे = धृतवत् ।
धीरताधुराम् = पर्यभारम् । “अक् पूरम्” इत्यादिना समासान्तो-
ऽप्रत्ययः । अधरीकृतवान् = त्यक्तवान् । अनुशसः । चूर्णकं गन्धम्,

समर्द्धता किं देशक हा शेर कोत चिया; लेकिन शेर मारने की अपेक्षा
बलि शेर की वश में करना हा अधिक प्रशंसनाय होता है, अतः यदि
तुम छल में शिवाजी को बलि दित हा पकड़ लाओ तो तुम्हें वीरपुत्र की
उपाधि देन के साथ हा तुम्हारी पदवृद्धि भी कर दूँगा । मैंने गोपीनाथ
पण्डित को भी तुम्हारे पास भेज दिया है, वे मेरे अभिप्राय को तुम्हें
तार से समझावेंगे और प्रशस्तिपत्र शिवाजी से भी मिलेंगे ।”

यह सुनने ही शिवाजी की अंग अंग रेशमों जाल में रँछी मछली
का तरह हो गई (जानी में जाल कोरे पड़ गए), मुखमण्डल नवोदित
सूर्य के समान जल हो गए और अंग पर्यं छोड़कर पड़ने लगे ।

द्वितीयो निधासः

ने]

अथ स दक्षिण-कर-पत्रवेन शम्भु परामृशमाकाशे दृष्टिं वदन्त्या-
भरे रे विजयपुर-फलदम् । स्वयमेव जीवन् शिवः सद्यः राज-
गानोनाथस्य, वीरपुत्रयोषाधिसद्वकारेण तव महती परवृद्धिमद्वी-
रिष्यति, तस्मिन् प्रेयसि मृत्योः क्रीडनकान्तेतान् कदम्ब-इत-
कान् ?—इति सास्त्रेदमवोचन् । भट्टच्छब्द “प्रापते वा कश्चिद्
पुतान्तो गोपीनाथपण्डितस्य ?”

बाबू गीरसिंह किमापि विषयं विचार्य सायत्नतोहारः प्रविश्य
‘विजयतां महाराज’ इति त्रिप्याङ्ग्य, फरी संपुटीकृत्य, शिरो
नमयित्वा कथितवान् “भगवन् ! दुर्गन्धारि कश्चन गोपीनाथनामा
पण्डितः भीमन्तं विरहधुरूपतिष्ठते । नायं समयः प्रभूणां दर्शनस्य,
पुनरागम्यताम्” इति वदन् कथ्यमानोऽपि “किञ्चनात्यायइयक-

इत्यादीति, प्रसारश्च गुण इति तत्र तत्र न विस्मरणीयम् । शिवः =
विश्ववीर्यः । परवृद्धि = स्थानोन्नतिम्, ‘उरकी’ इति भाषायाम् ।
मृत्योः = वयस्य । क्रीडनकान्तेतान् = खेलसाधनानि । सप्रतिष्ठमरणानिति

उसके बाद शिवाजी ने, दाहिने हाथ से मूँछों पर ताव देते हुए,
आकाश की ओर दृष्टि कर, “अरे बीजापुर के कलदू । स्वयं शिवाजी
ही बंशित रहकर, तुम्हारी रावधानी पर आक्रमण करके, वीरपुत्र
उपाधि के साथ तुम्हारी ही हुई परवृद्धि (उरकी) स्वीकार करेगा, मृत्यु
के क्षिणने इन दुष्ट कार्यो को क्यों भेजते हैं ?” यह वाक्य कई बार
दुहराया और गीरसिंह से पूछा, ‘क्या गोपीनाथ पण्डित का कोई समा-
चार मिला ?’

गीरसिंह कुछ करना ही चाहते थे कि इतने में ही हारपाल ने आकर,
तीन बार ‘महाराज की जय हो’ कह कर, हाथ जोड़कर, सिर झुका कर
बरा, महाराज ! बिठे के पारक पर कोई गोपीनाथ नामक पण्डित
आवकें दर्शनों की इच्छा से खड़े हैं । ‘यह समय महाराज से मिलने का

कार्यम्" इति प्रतिजानाति । तदत्र प्रभुचरणौ एव प्रमाणम्—इति ।

तद्वगत्य "मोऽयं गोपीनाथः, मोऽयं गोपीनाथः" इति मन्त्रे सतर्के सोत्साह्य व्याहृतश्रुतिनिमित्तेषु, त्रिचोरेण निजवाच्यत्वे माल्यभोक्तृनामा संपोष्य कथितो यद् गम्यतां दुर्गान्तर एव महावंर-मन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम्, भोक्तृ-वर्गद्वन्द्व-मुत्तर-सामर्थ्य-जातेन च सक्रियताय, ततोऽहमाय साक्षात्करिष्यामि—इति ।

सतो वादमित्युक्त्या प्रयाते माल्यभोक्ते; "महाराज ! भज-चेदहमस्य अपजलम्यानं कथमपि साक्षात्कृत्य, तस्याग्लिष्ठं व्यर्चनं पित्राय प्रभुचरणेषु विनिवेदयामि । नाधुना मम श्रान्तिः शान्तिः यतः संन्यासिवेषोऽहं समागच्छन् द्वयोर्वचनभटयोर्वार्तयाऽयागन्-

वावत् । साक्षात्करिष्यामि = द्रक्ष्यामि । गोपीनाथमिति शेषः ।

वादम्, अहोकारसूचकमन्त्रवम् । व्ययसिनम् = उद्योगन् ।

महो है, पुनः आहयेगा,' बार-बार कहने पर भी, कहते हैं कि 'कुछ बुरा करी काम है।' प्रभुचरणों का वैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जाय ।

यह जानकर, 'यह वही गोपीनाथ है, यह वही गोपीनाथ है,' इ प्रकार सभी लोगो के अनुमानपूर्वक और उत्साहपूर्वक बार-बार कहने 'शिवजी ने अपने वचन के मित्र माल्यभोक्त को सम्बोधित कर का 'बाओ, दुर्ग के अन्दर ही महावंर-मन्दिर में उन्हें उदरभो और मोहन, पठन आदि सुखद सामग्रियों से उनका उत्कार करो, फिर मैं भी उनके मिलूंगा ।'

उसके बाद, माल्यभोक्त के 'अच्छी बात है' कहकर चले जाने पर, ने शिवजी के कान में धीरे से कहा, 'महाराज ! यदि आजकी आज्ञा हो, तो मैं आज ही किसी प्रकार अकृतज्ञ छूँ से मिल कर, उसका साथ इरादा बान कर आकर आप से निवेदन करूँ । अब मुझमें न तो रुद्धिगुणा रह गई है, न शान्ति, क्योंकि संन्यासी के वेष में आते हुए इसे

यन् एवैते युयुत्सन्ते" इति गौरसिद्धो मन्दं कर्णान्तिकं व्याहार्योन् ।

ततो "बोर ! कुशलोऽस्मि, सर्वं कल्पितम्, जाने त्वं पातुगीम्, तद् यथेष्टं गच्छ, नाहं व्याहृन्मि तवोत्साहम्, नीतिमार्गान् वेत्सि, किन्तु परिपन्थिन एते अत्यन्तनिर्दयाः, अतिकल्प्याः, अतिवृट्नीतयश्च सन्ति । एतैः सह परम-साधधानतया व्यवहरणीयम्"—इति कथयित्वा शिष्ययोग्मं विसर्ज्य ।

गौरसिद्धस्तु प्रिः प्रणम्य, ऊधाय, निवृत्त्य, निर्गत्य, भवतीत्यं, सर्वादि ताया एव निम्ब-नर-सक्त-वेदिवायां समीप आगत्य, स्वमह-

स्मृतिः=धृमा । कर्णान्तिकम् = अवनमनम्. यन् । असर्वकल्पितमिति वाच्यम् ।

पातुगीम् = कोपयन् । "गुणवचनवाक्यप्रतिभ्यः" इति ध्वनि भङ्गोपपन्नोपयोगः, विन्वा-दोषि । व्याहृन्मि = नाशयामि । परिपन्थिनः = यत्रयः । अत्यन्तं निर्दयाः = इत्यन्त-याः । अतिकल्प्याः = परमन-याः । "वदमे कल्पयुग्मं" इत्यमरः । अतिवृट्नीतयः = कपयवाक्ययुगाः । "माया निम्बवचनेषु वेदवाक्यप्रतिभ्यः । अतोपने ऐक्यगुह्य आगत्य कृत्यमिषयामि" इत्यमरः ।

पाते मे ही दुःखमान सिरादिही की हातथीत से बड़ा बड़ा कि वे बच ही सड़ना चाहते हैं ।

तदनन्ता, विद्यायां मे, यह सब । तुम अपना कुछ ही हो, मैं तुम्हारी चतुर्था को जानता हूँ, तुम सब कर लोगे, अतः अपना इच्छातुल्य करो, मैं तुम्हारा उत्साह नहीं मानना चाहता । तुम नीतिमार्गों को तो जानते हो, पर वे तुम को बुरा, नष्ट करने का कारण है, इनके साथ बड़ा साधधानता बरतना चाहिये । यह सब कर मोर्छकेट को निहा निहा ।

गौरसिद्ध ने तीन बार प्रणाम कर, उठ कर, पूरे कर, चार निम्ब कर, चार उठ कर, एक उठी नमः क देह के नष्ट करके ही नमः

चरं कुमारमिहतेनाऽऽहूय कस्मिंश्चिन् स्वसंकेतित-भवने प्रविश्य
आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमाद्रे-

शोण-पट्ट-निर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिमित्ते महाई उपानदी
धारण्यवा, लघोयसी तानपूरिकामेकां सह नेतुं सहचर-द्वस्ते समर्थः,
गुप्तरुणिकां दन्तावलदन्त-मुष्टिकां यष्टिकां मुष्टीं गृहीत्वा, पटवा-

इहितेन = सङ्कतेन । प्रसाधनिकया = कङ्कतिकया । “प्रसाधनी
कङ्कतिके” त्रयः । “कपी” इति हिन्दी । सौधनेन = मुखवर्णविरचितेन,
कुम्भमलतादीनां चित्रेण, विचित्रिताम् = संश्लिताम् । लघूष्णी-
मुष्णीपिका, साम् । “टोपी” इति हिन्दी । शोणपट्टनिर्मितम् = रक्त-
दोषवर्धितम् । अधोवसनम् = अधोभाग्येण चरणेन धारणीयं वसनम् ।
“पावत्रामा” इति हिन्दी । दिल्लीशब्दो “दिल्लीवज्रमपाणिपत्त्यतले नील
नवान वय” इत्यादौ शिङ्कितराजेनापि व्यवहृतः । महाई—इत्यत्र ‘ईरूरे’
हिन्दिनेन प्रयुज्यमानं प्रकृतिभावो बोध्यः । तानपूर एव तानपूरिका ।
“तानपूर” इति हिन्दी । सहेत्यस्य “आत्मने”ति शेषः । तानपूरिका-
छादयन् न महश्चन्द्रेन विशेषविशेषणभाव एवेति न तत्र तृतीयाऽऽशङ्का ।
दन्तावलदन्त = वणिज दन्तः । मुष्टिका यस्यां ताम् । दन्तेन निर्मितेति
स समस्तानां समामो वा । “शायी शक्ति की मूढवाली गुप्ती उदी” इति

अतः माय चङ्के जो इशारे से चुकाकर, किता पहल से निश्चित भवन
में प्रवेश कर भवन की उस मङ्के के वाली की कपा से सँवार कर,
नई का ग २ काई से पीठ कर, मये पर मिन्दूर का निष्क भगा कर,
मह उन्नी कर, मुई ने मिश मोने के काय वाली गुप्तरादि चित्रित
मह उन्नी कर, मह उन्नी अंतरभा, मल करके का पावत्रामा, दिल्ली के
ने चङ्केर दूरी पहन कर, छोटे से एक तानपूरे की साथ ले जाने के
उस माय काङ्क के साथ से देकर बिजये मुष्टी गुप्त था ऐसा शायी के

शिवराजविजय

दिनोचो निभासः

नुरयन्, वरस्यपटखण्डेन च मुहुमुहुस्ताननं प्रोचन्
अपजडयान-शिबिराभिमुखं प्रतस्थे।
शिरसि गच्छन्तो, सपथेन परशव-श्वेतपट-कुटीरे-
य-मण्डलावितं दीपमाळा-विहित-यदुल-याकपस्थम्
यान-शिबिरं दूरं एव रश्मन्तो, यावत्समीपमागच्छ-
कथन कोकनद-पर्व-यस्य-खण्ड-वेष्टित-मूर्धा, कटिपर्यन्त-
गच्छयामाह्वर्यधुक, कर्तुं राधो वसनः, शोभ-इमभुः, विजय-
उ-नामादित-यदुल-विषय-परिका-परिकटित-याम-यस्य-

पटवर्तनः = मुगलपटवर्तनः। "रथ" इति हिन्दी। दनुरयन् =
यन्, मुगलपटवर्तनः। वरस्यपटखण्डेन = वरस्यपट-
खण्डेन। "दली इमाक" इति हिन्दी।
शाहमेपमण्डलावितम् = शाहमेपमण्डलावितम्। य-
यादुल-याकपस्थम्। कोकनद-पर्व-यस्य-
खण्डेन = वेष्टितो मूर्धा यस्य सः। कटिपर्यन्तं मुनडा काकश्यामा =
विषय-यस्य, भद्रपथि यस्य सः। कर्तुं राधो वसनं = कर्तुं राधो वसनं,
शोभ-इमभुः = रत्नमुल-वेष्टः। विजय-
पुत्राधीनताप्राप्तितया = वरस्यपटवर्तन-विहितया, कर्तुं यया = गोलाकारया,

दाँट की मूठ वाली गुली छड़ी हाथ में लेकर, रथ की मुगल से दिशाओं
की मुगलित करते हुए, हाथ में लिये रुमाक से बार-बार मुँह पीछे करते हुए,
गायक के चरण में, अपजड लाल के शिबिर की ओर प्रस्थान किया।
उदन्तर, जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहे वे दोनों, ठीक-ठीक श्वेत सेमी
। घायल कर्तु के मेघमण्डल के समान लगने वाले, दीपमाळिकाओं से
आगमना रहे, अपजड लाल के शिबिर की ओर से ही देखते हुए, रात की
बात ज्योंही समीप पहुँचे, साहस्यल की ही कान्तिवाले कपड़े के टुकड़े की
सिर पर छपे, कमर तक लम्बी कोय के रंग के समान बाला अंगारका
परने, चित्तकरी गुली परने, साह मूठ वाली वाले, बीजापुर के

स्थलः स्कन्धे भुशुण्डी निधाय, इतस्ततो गतागतं कुर्वन् सावष्टम्भनु-
भापया उवाच—‘कोऽयंकोऽयम् ?’ इति; ततो गौरसिंहेनापि ‘गा-
कोऽहं श्रोमन्तं दिदृक्षे’ इति समादवं व्याख्यायि । ततो ‘गम्यतामन्ये-
ऽपि गायका वादकाश्च सम्प्रत्येव गताः सन्ति’ इति कथयति प्रहरिणि,
‘घृतेन स्नातु भवद्रसना’ इति व्याहरन् शिविर-मण्डलं प्रविवेश ।

तत्र च कचित् स्वत्वामु पर्यङ्केषु चोपविष्टान्, सगडगडागर्ग
ताम्रक-धूममाकृष्य, मुस्तान् कालसर्पानिव श्यामल-निश्वासानु-
दगिरतः, स्वहृदय-कालिमानमिव प्रकटयतः, स्वपूर्वपुरुषोपाजि-
पित्तलपट्टिकया = पातुकलकिकया, लोके “चररास” इति ज्ञात्वा

परिकलितम् = भूषितम्, वामं वक्षःस्थलं यस्य सः । सावष्टम्भम्
सप्तविरोधम् । समादंयम् = समोमल्लतम् । व्याख्यायि = कथितम् । घृते-
स्नातु भवद्रसनेति, “आपके मुँद में घी चीनां” इत्यर्थकलोक्यवादक-
नम् । भवत्पुत्र लोकोक्तिरलङ्कारः ।

तत्र चेत्यारम्भ प्रधानपटकुटीरद्वारमाससादेत्येकान्वयि । ताम्रकम् =
“तमाल” इति हिन्दी । ताम्रकधूमनिश्वासस्य स्वत एव श्यामलस्य मुस्तानु-
दमितस्य कालसर्पत्वेनोत्प्रेक्षा । यथैन्द्रजालिका बनान्मोदयितुमाननात् कृष्ण-
सर्पानुदमगति तथैवैते शिवकारमोहनाय स्थिता इत्युपमालङ्कारस्य व्यङ्ग्यत्वेन

के नाम से अङ्कित गोल पीतल की चररास छाती को सारं ओर डाले, कं-
पर बन्दूक रखकर इधर उधर गला लगा रहे किमो आदमी ने उन्हें घे-
कर, उर्दू भाषा में कहा, ‘कोन है, यह कोन ?’ गौरसिंह ने नम्रता से कहा,
‘मैं गायक हूँ, दुख से मिटना चाहता हूँ ।’ तब प्रहरी के ‘बाओ और
भी गाने और बजाने वाले अभी-अभी गये हैं’ यह कहने पर, ‘आपके मुँद
में घी-चूर’ कहता हुआ गौरसिंह शिविर में प्रविष्ट हो गया ।

वहाँ, कहीं लाटो और पलंगों पर बैठे हुए गड़गड़ ध्वज के साथ
श्यामल का पुर्भा मँच कर दूर से बाले सरो के समान पुर्भा निचास रहे,
मनो अपने हृदय की कालिया को प्रकट कर रहे, मानो अपने पूर्वजों का

द्वितीयो निश्वास

कानिष पूंकारैर्मिनान् पुंनः, मरणोत्तरमतिदुर्लभं मुखा-
 दीन जीपन-दशायामेवाऽऽकलयत, प्राप्ताधिकारकलितायव-
 ; कश्चिद् "हृदिद्वा हृदिद्वा, लुगुनं लुगुनम्, मरिचं मरि-
 , पुकं पुकम्, विनुमकं विनुमकम्, गृह्णेरं गृह्णेरम्, रामठं
 टम्, मत्तयण्डो मत्तयण्डो, मत्स्या मत्स्या, कुकुटान्डं कुकु-
 गम्, पल्लं पल्लम्" इति कलहनेषां लानां निद्रा विद्रावयन्,

स्वपद्माराधयति । अन्ययोनिषुते स्वहृदयस्य कालिमानामिव । पुनरप्यु-
 षते स्वपुंनपुरुषेऽन्वयमूकभूतेः, उपातिमान्-संघितान्, पुण्यलो-
 कान् = स्वर्गादिभान् । अम्रिताम् = बहुपदीनीभूतान् । ददत इति भावः ।
 तावत्तुनाकर्षणमद्रिस्पर्शावेनोदिषते-मरणादुत्तरम्-देहात्मानन्तरम् ।
 प्राप्तेनान्वयेन, अधिकारेण = स्वायत्तेन, अरायः = बहुलभूतः, गर्व-
 भनिमानो वेणी तान् । हृदिद्वा-ज्जगत्तन् । 'निद्राया कायनी पंता
 हृदिद्वा परपत्नी'त्यमरः । मभ्यमे द्विक्रिः । पुकम् = गृह्णाकम् ।
 'पतिविहङ्गक्य पुकम् गृह्णाकम्'त्यमरः । "गृह्ण" इति हिन्दी । विनु-
 म्=उषा । "अप-उषा विनुमकम्"त्यमरः । "सोफ" इति हिन्दी ।
 गृह्णेरम्=भाट्टकम् । "भाट्टकं गृह्णेरं ग्राहि"त्यमरः । "भाट्ट" इति
 लो । रामठम् = रिड्ड । मत्तयण्डो = पाण्डितम् । "एव" इति
 लो । कुकुट्या भाट्टं कुकुटान्डम् । "कुकुट्यादीनामण्डादिभि" ति

उपाविष्ट स्वर्गादि पुण्य-लोकी को पूँक मार कर चला रहे, मरने के बाद
 (मुक्तत्मानों के मुहों का चलाना उनके धर्म से निर्भिन्न होने के कारण) न
 प्राप्त हो सकने वाले अग्निसंयोग को बीजित दशा में ही प्राप्त कर ले रहे,
 अधिकार सम्पन्न होने से समस्त में पूर हो रहे, दवनपुत्रकी; और कही
 'रुली रुली, मरमुन-उरमुन, मरिच-मरिच, सयई-सयई, सोफ-सोफ,
 अदरस-अदरस, होग-होग, राव-राव, मरुकियी-मरुकियी, मुर्गा का भण्डा-
 मुर्गा का भण्डा, मास-मास' के कोमारल से बच्चों की नौद एएम कर रहे,

